कार्यकर्ता एक मनः स्थिति

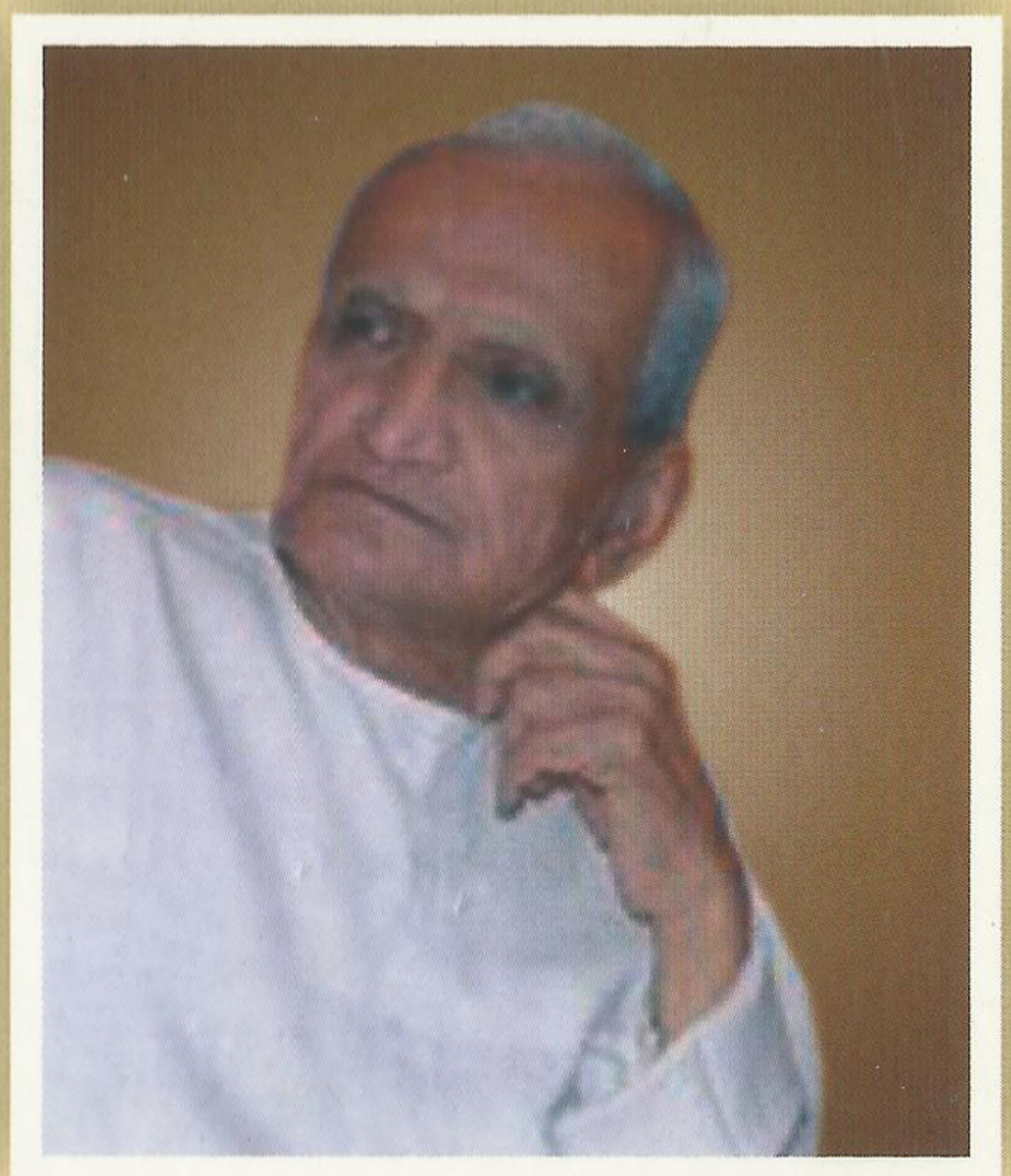

दत्तोपंत ठेंगड़ी

कार्यकर्ता एक मन:स्थिति

दत्तोपंत ठेंगड़ी

वनवासी कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं को
दिये गये मार्गदर्शन का संकलन

राजस्थान वनवासी कल्याण परिषद्

'कल्याण आश्रम', प्रताप कॉलोनी, हिरण मगरी से.१३

उदयपुर-३१३००२

दूरभाष:०२९४-२४८४३१६,२४८४४५६,

बेबसाइट:www.rvkp.org.

Email-info@rvkp.org, rvkpudaipur3@gmail.com

कार्यकर्ता एक मन:स्थिति

प्रकाशक :

राजस्थान वनवासी कल्याण परिषद्

संकलन एवं सम्पादन:

डॉ. राधिका लढ़ा

प्रथम संस्करण: २०१२

मूल्य: २५ रूपये

मुद्रक :

पायोराइट प्रिंट मिडिया प्रा. लि., उदयपुर

निवेदन

अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम द्वारा वर्ष २००२ में राजस्थान में पांच दिवसीय पूर्णकालीन कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग का आयोजन हुआ। इस वर्ग में प्रखर एवं प्रगल्भ चिंतक, भारतीय मनीषा के व्याख्याता, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक एवं अखिल भारतीय मज़दूर संघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री माननीय दत्तोपंतजी ठेंगड़ी का मार्गदर्शन मिला। उनके चार प्रवचन हुए। जिन्हें शब्दबद्ध कर शृंखलाबद्ध रूप से बप्पारावल मासिक पत्रिका में प्रकाशित किया गया। इन लेखों को पढ़कर अनेक लोगों ने आग्रह किया कि इन्हें पुस्तक का रूप देकर अन्यान्य संगठनों में कार्यरत कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शन हेतु प्रकाशित किया जाए। इस लोक-मांग को देखते हुए यह पुस्तक सम्पादित कर प्रकाशित की जा रही है। इस पुस्तक का पांचवा प्रवचन अन्यत्र दिये गये उद्‌बोधन का संकलन है किंतु पूर्व के चार खण्ड़ों की विषय वस्तु को ही आगे बढ़ता प्रतीत होने से इस शृंख्ला में इसे सम्मिलित किया गया है।

जैसे सागर में भटकती नाव को किनारे पर खड़ा प्रकाश-स्तंभ गंतव्य तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त करता है वैसे ही मा.ठेंगड़ीजी के ये प्रवचन हमारे कार्य के अधिष्ठान को स्पष्ट कर कार्यकर्ताओं के मन में उठते अनेक प्रश्नों एवं शंकाओं का समाधान करते हुए सही दिशा में बढ़ने की प्रेरणा का पाथेय बनेंगे।

डॉ. राधिका लढ़ा

सम्पादक

कार्यकर्ता एक मन:स्थिति

१

मैंने वनवासी कल्याण आश्रम के लिये कोई काम नहीं किया है। हाँ कभी–कभी बुलाया तो भाषण दे कर चला गया। किन्तु निरीक्षण वनवासियों के जीवन का ही रहा है, वनवासी कल्याण आश्रम और कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं का रहा है। 1950 से निरीक्षण करता आ रहा हूँ मेरे पास इंटक (INTC) का काम था। उस समय वर्धावेली और प्रियन्वेली के कोयला खदानों का मैं अध्यक्ष था। उस नाते मैं दौरा करता था। कोयला खदानों में वनवासी मज़दूर थे। वे बहुत ही गरीब थे और उनकी दयनीय अवस्था थी। ठीक खाने–पीने को नहीं, बच्चों के लिये दूध नहीं, झोंपड़ी भी नहीं। एक पालू ऊपर है, वो भी हवा का झोंका आते ही उड़ जाता है, वहाँ से वापस आने पर परम पूजनीय गुरूजी ने पूछा, "क्या देख कर आये?" मैनें कहा कि ऐसी ऐसी स्थिति है तो गुरूजी ने कहा कि मज़दूर युनियन को उन मज़दूरों की सबसे ज्यादा चिंता करनी चाहिये जो सबसे ज्यादा गरीब हैं। जैसे एक माँ अपने सबसे दुबले पतले, बीमार रहने वाले बच्चे की सब से ज्यादा चिंता करती है, हालांकि सब के साथ प्रेम है। खैर, भारतीय मज़दूर संघ का 1955 में निर्माण हुआ। तब काम बहुत छोटा था, आज भले ही नंबर एक पर होगा। उस समय कोई काम नहीं था तो भी ग्रामीण और वनवासी मज़दूरों की अवस्था के विषय में पूरी जानकारी होनी चाहिये ऐसा सोचा। सन् 1969 में उस समय के राष्ट्रपति वी.वी. गिरी को हमने मेमोरेण्डम दिया उसमें 'वनवासी लेबर' नाम से एक अलग परिशिष्ट

वे बहुत ही गरीब थे और उनकी दयनीय अवस्था थी। ठीक खाने–पीने को नहीं, बच्चों के लिये दूध नहीं, झोंपड़ी भी नहीं। एक पालू ऊपर है, वो भी हवा का झोंका आते ही उड़ जाता है,

था। राष्ट्रपतिजी ने जब देखा तो पूछा, "आपकी वनवासियों में युनियन है क्या ?" हमने कहा कि युनियन तो नहीं है, हमने अध्ययन करके लिखा है। वे बोले "यह ध्यान में रखो, शहर के मज़दूरों को संगठित करना आसान है, गाँव के मजदूरों को संगठित करना कठिन है और वनवासी मज़दूरों को संगठित करना सबसे कठिन है।"

उस समय हमारा चिंचालकर जी से पुराना संबंध था। प्रारंभ में जब संघ का काम फैलाने दक्षिण में जो लोग गये, चिंचालकर जी उनमें से एक थे जिन्होंने मद्रास में प्रत्यक्ष शाखा शुरू की थी। उन्होंने वहाँ 'बकिंगहेम एण्ड कर्नाटक मील' मज़दूरों की यूनियन बनाई, जो हिन्दुस्थान की पहली मज़दूर यूनियन थी। बाद में कुछ पारिवारिक और स्वास्थ्य विषयक शिकायतों के कारण वे प्रचारक पद से रिटायर हो गये। परंतु मन में हमेशा समाज सेवा की इच्छा होने के कारण 'भारतीय आदिम जाति सेवा संघ' से जुड़ गये। चिंचालकर जी जब उसके सचिव बने तब मोराजी भाई अध्यक्ष थे। बाद में वे स्वयं उसके अध्यक्ष बने। बाद में वे गुरूजी से मिलने आये। सारी चर्चा हुई, जिसमें उन्होंने एक बात कही कि ठक्कर बापा तो हृदय से सबसे प्रेम करने वाले हैं केवल वनवासियों से ही नहीं, सभी गरीबों से प्रेम करते थे। महात्माजी के कहने पर ठक्कर बापा ने वनवासियों में काम शुरू किया था।

हम लोग आग्रह पूर्वक वनवासी शब्द का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजों ने आदिवासी शब्द चलाया था। हम लोग 'आदिवासी' शब्द में विश्वास नहीं करते। हम सब यहाँ के आदिवासी हैं। स्वतंत्रता मिलने के बाद सरकार जिनके

हम लोग आग्रह पूर्वक वनवासी शब्द का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजों ने आदिवासी शब्द चलाया था।हम लोग 'आदिवासी' शब्द में विश्वास नहीं करते। हम सब यहाँ के आदिवासी हैं। स्वतंत्रता मिलने के बाद सरकार जिनके हाथ में आ गई, वे गाधीजी के शिष्य थे। मानो गांधीजी के दो प्रवाह थे : एक राजनीति में और एक रचनात्मक कार्य में।

हाथ में आ गई, वे गांधीजी के शिष्य थे। मानो गांधीजी के दो प्रवाह थे: एक राजनीति में और एक रचनात्मक कार्य में। जो राजनीति में थे उनको लगा कि रचनात्मक कार्य करने वाले अपने गुरू भाई हैं और हमें उनकी सहायता करनी चाहिये तो उन्होंने सर्वोदय वालों की भी काफी सहायता की और ठक्कर बापा की भी। दोनों ने सहायता स्वीकार की। चिंचालकर जी ने यह बात गुरूजी को बताई। गुरूजी ने कहा कि तभी तो देने वाले ने भी सद्भावना से दिया और लेने वाले ने भी सद्भावना से ही लिया परंतु मनुष्य स्वभाव ऐसा है कि आगे चल कर इसके दुष्परिणाम निकल सकते हैं। चिंचालकर जी की मृत्यु के पश्चात् नागपुर में उनका सत्कार करने के लिये जिन दो संस्थाओं ने पहल की थी, उनमें वनवासी कल्याण आश्रम भी एक संस्था थी, यह उल्लेखनीय बात है।

वनवासी क्षेत्र में काम करने वालों में प्रथम नाम बालासाहब देशपांडे का आता है। यह संयोग की बात है कि मैं और देशपांडे जी एक ही गांव आर्वी के हैं, एक ही शाखा के स्वयंसेवक रहे हैं। परंतु उस समय हमें कोई समाजसेवा वगैरह की कल्पना नहीं थी। जिस समय मैं प्रचारक बना, नागपुर जिला संघचालक बालासाहब देशपांडे के भाई एस.के. देशपांडे एडवोकेट थे और उनके नेतृत्व में मुझे नागपुर कार्य विस्तार करने का मौका मिला। यह एक नज़दीक लाने वाली बात हो गयी।

एक विशेष परिस्थिति में कल्याण आश्रम का निर्माण हुआ और उसमें पंडित रविशंकर जी शुक्ल का नाम आता है। शुक्ल जी कांग्रेस के मुख्य मंत्री थे किंतु उस समय धर्मनिरपेक्षता के नाम पर हिन्दुत्व का विरोध करने वाला धड़ा पंडित नेहरू के नेतृत्व में था और दूसरा हिन्दुत्व का समर्थन करने वाला, सरदार पटेल के नेतृत्व में था। और मैं समझता हूँ कि सरदार वल्लभभाई पटेल का वर्चस्व यदि कांग्रेस में हो जाता तो शायद भारतीय जनसंघ बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हिन्दुत्ववादी लोग, पुरूषोत्तम दास टंडन, द्वारकाप्रसाद मिश्रा, रविशंकर शुक्ल जैसे लोग उसी (पटेल वाले) धड़े में थे। गुरूजी के पिताजी के साथ शुक्ल जी का घनिष्ठ संबंध

ा था और गुरूजी के साथ भी उनके घनिष्ठ संबंध थे।

एक बार जनसंघ को संघ डोमिनेट करना चाहता है ऐसा अखबार में आया। दूसरे दिन गुरूजी शुक्ल जी से मिलने गये। संबंध तो अच्छे थे ही। शुक्ल जी ने कहा कि आपके उपर आरोप लगाया गया है कि आप जनसंघ को डोमिनेट करना चाहते हैं। गुरूजी ने कहा कि हम इतनी शाखाएं चला रहे हैं, हजारों लोग आते हैं तो केवल तालियाँ बजाने का काम करेंगे क्या? यह बात तो सही है कि हम जनसंघ को डोमिनेट करना चाहते हैं लेकिन यह अर्धसत्य है। सच्चाई यह है कि हम सब पार्टियों को डोमिनेट करना चाहते हैं। फिर मजाक में कहा, लोग कह रहे हैं, आज भी मध्यप्रदेश में आर. एस.एस. का राज है, यानि रविशंकर तो आर.एस.एस. के हैं।

जनसंघ के निर्माण के बाद मुझे सेक्रेटरी बनाया गया। संस्था का चुनाव आया और उसमें कांग्रेस और शुक्ल जी के खिलाफ भाषण देने का काम भी हमें करना पड़ा। कांग्रेस जीत गई और शुक्ल जी मुख्यमंत्री हो गये। उसके बाद नागपुर में 'हिन्दुस्थान समाचार' नाम कृत संस्था शुरू हुई। उसके दफ्तर का उद्घाटन किससे कराना, यह चर्चा हुई। लोगों ने कहा, अच्छे और बड़े व्यक्ति के हाथ से हो, तो शुक्ल जी का नाम आया। पर प्रश्न था, "क्या मुख्यमंत्री आयेंगे ?" अपने लोगों ने तो उनका विरोध किया है। गुरूजी ने मुझे कहा कि तुम्हारा पुराना संबंध है, तुम जाकर सीधे बताओ कि 'हिन्दुथान समाचार' हमारी संस्था है और आपको उसका उद्घाटन करना है। हमने कहा, ''दद्दा, मैं प्रार्थना लेकर आया हूँ''। उन्होंने कहा, "क्या प्रार्थना लेकर आये हो, चुनाव में तो हमें गाली देते थे।" हमने कहा, "दद्दा, राजनीति में सारा नाटक होता है, आप जानते हैं, इसको ज्यादा श्रेय देने की आवश्यकता नहीं होती।" उन्होंने पूछा, ''गोलवलकर जी ने कहा है क्या ? तो मैं आता हूँ''। वो आ गये। सबको आश्चर्य हुआ। कहने का मतलब है कि उस समय संबंधों का स्वरूप बिल्कुल भिन्न रहता था।

आज की परिस्थिति में उस समय के संबंधों का वर्णन करना कठिन है। उदाहरण के तौर पर यह आक्षेप बार बार आता है और उसके बारे में बोला

नहीं जाता। कांग्रेसी आज बार बार कहते हैं कि जिस समय स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था उस समय संघ वाले कहाँ छिप गये थे ? इन्होंने क्या किया ? हम यह पूछना चाहते हैं कि उस समय की परिस्थिति क्या उनको मालूम नहीं, या उसके बारे में जानकारी नहीं, अज्ञान है? और यदि मालूम है तो यह ढोंगपन की बात है। इसको मैं स्पष्ट बताता हूँ। आज के युवाओं को यह बात मालूम नहीं इसलिये बताता हूँ। सन् 1937 तक कांग्रेस यह पार्टी नहीं थी। 1937 तक कांग्रेस सबका मिलकर एक साधारण मंच था स्वतंत्रता के इच्छुक लोगों का। उसमें सब तरह के लोग थे। कट्टर हिन्दू, कट्टर मुसलमान, कट्टर समाजवादी, कुछ समय कम्युनिस्ट भी थे, बिरला वगैरह भी थे, जो सशस्त्र क्रांति में विश्वास करते थे वे भी थे और अहिंसावादी भी थे। इसके कारण बहुत सारे संघ वाले कांग्रेस में थे। यहाँ तक की हिन्दू महासभा के लोग भी थे। संघ में थे, कांग्रेस में भी थे। ऐसी कोई तटबंदी उस समय नहीं थी। 1937 के बाद परिस्थिति बदल गई।

केवल एक उदाहरण बता रहा हूँ। 1934 के दिसम्बर में वर्धा में जो जिला शिविर आयोजित हुआ उसमें परम पूजनीय गांधीजी आये उसका विवरण सब लोगों ने पढ़ा। लेकिन दूसरी एक घटना लोगों को मालूम नहीं है। उस शिविर का उद्घाटन सर मोरोपंत जोशी ने किया। शिविर जहाँ था वह जमीन जमनालाल बजाज, जो कांग्रेस के कोषाध्यक्ष थे, की दी हुई थी। सामान वगैरह भी उन्होंने ही दिया था। जमनालाल जी वर्धा में नहीं थे इसलिये उनकी पत्नी जानकी देवी बजाज उद्घाटन में आई थी। भाषण वगैरह के बाद मंच से उतर कर जानकी देवी ने और कुछ सहायता करने का आग्रह किया। ज्यादा आग्रह करने पर अप्पाजी ने संकोच करते हुए कहा, "कल हमारे डॉक्टर

उसमें सब तरह के लोग थे। कट्टर हिन्दू, कट्टर मुसलमान, कट्टर समाजवादी, कुछ समय कम्युनिस्ट भी थे, बिरला वगैरह भी थे, जो सशस्त्र क्रांति में विश्वास करते थे वे भी थे और अहिंसावादी भी थे। इसके कारण बहुत सारे संघ वाले कांग्रेस में थे।

हेड़गेवारजी आने वाले हैं। उनसे मिलने के लिये लोग आयेंगे। हमारे यहाँ बैरेक्स हैं किन्तु लोगों से मिलने की अलग व्यवस्था नहीं है। आपके गांधी आश्रम में गांधीजी से मिलने आने वाले लोगों के लिये अलग तम्बू है जिसमें गांधीजी सबसे मिलते हैं। वह एक तम्बू यदि दो दिन के लिये मिल जाये तो सुविधा हो जाएगी। जानकी देवी ने पूछ कर बताने को कहा। गांधीजी ने कहा, "भाई दो दिन की बात है हम हॉल में बैठेंगे। उसमें कितनी तकलीफ होगी ?" (यानि कोई तकलीफ नहीं होगी) गांधीजी द्वारा अनुमति देने के कारण शाम को जानकीदेवी बजाज का आदमी तम्बू लेकर आ गया। घटना छोटी सी है परंतु उस समय का वायुमंडल अलग था यह ध्यान में आता है। इसलिये जिन्होंने स्वतंत्रता के लिये काम किया वे सब कांग्रेस का झण्डा हाथ में लेकर काम करते थे। यहाँ तक की 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना होने के पश्चात भी 1931 में जंगल सत्याग्रह हुआ, जो डॉक्टर जी ने अपने साथियों के साथ किया, तब भी झण्डा कांग्रेस का ही था। यानि उस समय सब लोग कांग्रेस के ही थे। 1937 के बाद कोंग्रेस जब पार्टी बन गई तब उसमें से के.एम.पी.पी. के लोग, सोशियालिस्ट लोग अलग निकल गये, फारवर्ड ब्लॉक (नेताजी सुभाष चन्द्र बोस) के लोग अलग निकल गये, हिन्दू महासभा वाले अलग हो गये। कांग्रेस वालों की भी प्रवेश बंदी हो गई। यह सब 1937 के बाद हुआ। उससे पूर्व का वायुमण्डल भिन्न था। इसलिये यह जो आक्षेप लगता है कि संघ वालों ने क्या किया, इसमें कोई दम नहीं है, यह थोडा ध्यान में रखिए।

जिन्होंने स्वतंत्रता के लिये काम किया वे सब कांग्रेस का झण्डा हाथ में लेकर काम करते थे। यहाँ तक की 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना होने के पश्चात भी 1931 में जंगल सत्याग्रह हुआ, जो डॉक्टर जी ने अपने साथियों के साथ किया, तब भी झण्डा कांग्रेस का ही था। यानि उस समय सब लोग कांग्रेस के ही थे।

अब आज का विषय : संगठन। संघ का तो

उद्देश्य है, **हिन्दू समाज का संगठन**। पहले यह कहावत चलती थी कि organisation is our begining and organisation is our end, यानि सम्पूर्ण समाज का संगठन यही हमारा कार्य है। प्रारंभ से आखिर तक यही करेंगे। यह कहा गया था। परिकल्पना की दृष्टि से (Conceptually) संघ और समाज समव्याप्त है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संघ सम्पूर्ण हिन्दू समाज के साथ एकात्म है। यह भावना थी। इसके कारण यद्यपि संघ का काम धीरे–धीरे बढा, वनवासियों तक तो एकदम पहुंचा भी नहीं। तो भी धारणा यह थी कि सम्पूर्ण हिन्दू समाज यानि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। अपना ध्येय क्या है? परम पूजनीय डॉक्टर जी की बायफोकल (bi-focal) दृष्टि थी। बायफोकल यानि चश्मे के नीचे से आप पढ़ सकते हैं और ऊपर से आप दूर तक देख सकते हैं। डॉक्टर जी चश्मे के नीचे से देखते थे तात्कालिक लक्ष्य और चश्मे के ऊपर से देखते थे अंतिम लक्ष्य। तात्कालिक लक्ष्य के नाते बहुत चिंतन कर तय किया–हिन्दू राष्ट्र का स्वातंत्र्य, अंतिम लक्ष्य के नाते – हिन्दु राष्ट्र का परम वैभव। जो तात्कालिक लक्ष्य था वह 'याचि देही याचि डोला', यानि जल्दी से जल्दी प्राप्त होना चाहिये। अब उसके लिए साधन क्या होगा तो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये राजनैतिक दल और उस समय कांग्रेस ही प्रमुख राजनैतिक दल के नाते था और महासभा का काम केवल मुस्लिम तोषण नीति का था। लेकिन किसी भी पोलिटिकल पार्टी के द्वारा संघ का काम अंतिम लक्ष्य प्राप्ति का होगा, ऐसा वे नहीं मानते थे। अतः किसी अन्य साधन की आवश्यकता थी।

डॉक्टर जी चश्मे के नीचे से देखते थे तात्कालिक लक्ष्य और चश्मे के ऊपर से देखते थे अंतिम लक्ष्य। तात्कालिक लक्ष्य के नाते बहुत चिंतन कर तय किया–हिन्दू राष्ट्र का स्वातंत्र्य, अंतिम लक्ष्य के नाते – हिन्दु राष्ट्र का परम वैभव।

संघ का निर्माण ऐसे ही नहीं हुआ। कोई खबर सुन ली, कहीं समाचार पत्र में पढ़ लिया कि कहीं दंगा हुआ और आवेश में आकर संघ का काम शुरू कर दिया, ऐसा नहीं था। डॉक्टर जी जन्मजात देशभक्त थे। समकालीन सभी

आंदोलनों में उन्होंने हिस्सा लिया था। देशी–विदेशी विचार धाराओं के साथ उनका परिचय था। और इतना होते हुए भी सालों तक गहन मूलगामी दूरगामी चिन्तन चल रहा था। डॉक्टरजी की मृत्यु के पश्चात् क्रांतिकारी अनुशीलन समिति के एक ज्येष्ठ नेता त्रैलोक्यनयन चक्रवर्ती महाराज ने वक्तव्य दिया कि डॉक्टर जी ने 1925 विजयादशमी पर संघ की स्थापना की लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि इससे कई वर्ष पूर्व से उनका चिन्तन चल रहा था कि इस ढंग का कुछ न कुछ काम करना चाहिये। वे मुझे कई बार कहते थे, "महाराज जी हम सब लोग विभिन्न मार्गों से स्वराज्य के लिये काम कर रहे हैं यह तो ठीक है। कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र यह पसंद नहीं करेगा कि दूसरे राष्ट्र की गुलामी में वह रहे। लेकिन अन्य सारे राजनैतिक नेता जो कहते हैं कि एक बार यदि स्वराज्य का लड्डू हाथ में आ गया तो हमारी सारी इच्छाएँ पूरी हो जायेंगी। मानो स्वराज्य यानि अलादीन का चिराग हो। यानि हमारे हाथ में राज्य आ जायेगा तो हमारी सारी समस्याएँ सुलझ जायेंगी। मैं उससे सहमत नहीं हूँ। मुझे ऐसा लगता है जब तक हिन्दुस्थान का हर एक नागरिक राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत नहीं होता और ऐसे राष्ट्र भक्त नागरिकों का, जिनका राष्ट्रीय चेतना का स्तर ऊंचा हो, संगठन जब तक नहीं होता तब तक राष्ट्र के भविष्य की आशा नहीं है ऐसा मुझे लगता है।" यह विचार 1916 में उन्होंने मेरे सामने व्यक्त किये थे। इससे स्पष्ट है कि उससे पहले से चिन्तन की प्रक्रिया चल रही थी। तो बहुत चिन्तन, जन्मजात देशभक्ति, समकालीन सभी आंदोलनों का प्रत्यक्ष अनुभव, देशी–विदेशी विचारधाराओं का सम्यक परिचय और मूलगामी दूरगामी गहन चिन्तन–उसके फलस्वरूप संघ का निर्माण हुआ और उस समय तात्कालिक और अन्तिम लक्ष्य तय हुआ जिस समय संघ का प्रारंभ हुआ। उस समय नागपुर के लोग भी नहीं जानते थे कि किसी महान वटवृक्ष का बीजारोपण वहाँ हुआ है।

हिन्दुस्थान में कम्युनिस्ट पार्टी का निर्माण 18 अक्टूबर, 1920 को रूस के ताशकन्द शहर में हुआ, मानो कम्युनिस्ट पार्टी संघ से 5 साल ज्येष्ठ है।

जिस समय कानपुर में कम्युनिस्ट पार्टी के सम्मेलन में सात राज्यों के 500 प्रतिनिधि आये थे, उस समय नागपुर में केवल तरूण बाल कबड्डी, दण्ड, शूल खेल रहे थे। गली के लोगों को भी पता नहीं था कि किसी महान कार्य का यहाँ प्रारंभ हुआ है। बाद में धीरे धीरे काम बढ़ा तो लोग पूछने लगे, "आपने ध्येय तो बहुत बड़ा रखा है – राष्ट्र का परम वैभव – किन्तु आपके साधन तो बहुत तुच्छ दिखते हैं। इन साधनों से आप कहाँ से बड़ा ध्येय सिद्ध करेंगे?" मुझे स्मरण होता है 1945 की फरवरी में परम पूजनीय गुरूजी कलकत्ता आये थे तो कुछ लोगों को चाय पान के लिये बुलाया, जिसमें एक डॉक्टर महोदय भी थे, बूढ़े थे। उन्होंने कहा, "मैं अपनी खिड़की के पास खड़ा होकर आपकी शाखा का काम देखता हूँ। बहुत अच्छा है, अनुशासन है। लेकिन विचार मन में आता है कि आपने जो ध्येय रखा है, परम वैभव का, वहाँ तक आप इन तुच्छ साधनों से कैसे पहुंचेगे?" तो गुरूजी ने हंस कर पूछा, डॉक्टर साहब, "इस समय एलोपेथी का मास्टर ड्रग क्या है ?" तो उन्होंने कहा "पेनिसिलिन।" "पेनिसिलिन कैसे बनता है ?" "ऐसे अनाज से जो बासा है, दुर्गन्ध देता है, जिसको हम रसोई में रखना पसन्द नहीं करते"। तो गुरूजी ने बताया, "Does it not mean that even the worse thing can yield the best result at the hands of an expert?" डॉक्टर महोदय ने कहा, "यह बात तो ठीक है।" तुरंत गुरूजी ने एक वाक्य जोड़ दिया, "And here we are, the experts in the science of organisation. यानि हम यहाँ बैठे हैं ये संगठन शास्त्र के विशेषज्ञ हैं। मतलब था कि तुच्छ से तुच्छ वस्तु से भी अच्छे से अच्छा परिणाम निकाला जा सकता है।

गुरूजी ने कहा कि हम केवल दक्ष–आरम ही करेंगे लेकिन हम संघ का काम इतना बढ़ायेंगे कि हिन्दुस्थान में कोई भी काम बगैर संघ के आशीर्वाद के नहीं हो सकता, ऐसी हम परिस्थिति का निर्माण करेंगे।

प्रश्न आते थे, अरे भाई! यह कैसे होगा?" लेकिन डॉक्टर जी के मन में अन्त तक का पूरा विचार था। कहते थे, "काम करो, दक्ष–आरम

करो"। धीरे–धीरे जब शक्ति बढ़ती गई तो गुरूजी ने भाषा थोड़ी बदल दी। गुरूजी ने कहा कि हम केवल दक्ष–आरम ही करेंगे लेकिन हम संघ का काम इतना बढ़ायेंगे कि हिन्दुस्थान में कोई भी काम बगैर संघ के आशीर्वाद के नहीं हो सकता, ऐसी हम परिस्थिति का निर्माण करेंगे। धीरे धीरे और भी काम बढ़ा तो फिर कई समाचार पत्र निकले –कहीं 'युग धर्म', कहीं 'तरूण भारत' कहीं 'मदरलैंड', वगैरह। धीरे धीरे संस्थाएं निकली। प्रारंभ से ही यह योजना थी कि संघ को केवल संगठन करना। सम्पर्क के माध्यम से संस्कार, उसके माध्यम से स्वयंसेवक, उनका संगठन। संगठन का काम, जिनको कल्पना नहीं है समझ नहीं सकते, कितना कठिन है; एक एक स्वयंसेवक को तैयार करने में कितनी मेहनत करनी पड़ती है। तो संघ को केवल संगठन करना। लेकिन संघ से प्रेरणा और संस्कार प्राप्त किये हुए स्वयंसेवक व्यक्तिगत क्षमता से अपनी इच्छा, प्रकृति, प्रवृत्ति के अनुसार राष्ट्र–जीवन के विभिन्न क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। वहाँ उपयुक्त कार्य की रचना, उपयुक्त विचारों का विकास करेंगे। मानो इस तरह संघ में स्वयंसेवकों का निर्माण और स्वयंसेवकों द्वारा विविध कार्यों का निर्माण – इस तरह का श्रम विभाजन डॉक्टर जी ने 1925 से पहले से ही सोच रखा था, बोला नहीं। अब जैसे जैसे काम बढ़ा, विभिन्न संस्थाएं निर्माण होने लगी–9 जुलाई 1949 को विद्यार्थी परिषद्, 21 अक्टूबर 1951 को भारतीय जनसंघ, 23 जुलाई 1955 को भारतीय मज़दूर संघ आदि, तो लोगों को लगा, संघ सब कुछ कर रहा है। गुरूजी ने कहा, संघ नहीं कर रहा, संघ अपने स्थान पर है। किन्तु जैसे चन्द्रमा अपने स्थान पर है। प्रतिपदा के दिन बड़ी मुश्किल से चन्द्रकला दिखती है। परंतु कला बढ़ते बढ़ते जब पूर्णिमा आती है तो चारों ओर बढ़ते हुए प्रकाश से परिचय होता है, बगीचे में आता है, शयन कक्ष में आता है, हर कोना उस प्रकाश से भर जाता है। ऐसा ही संघ का है। किन्तु यह बात ध्यान में रखने लायक है कि 1925 के पहले से ही डॉक्टर जी के मन में यह था कि संघ कुछ नहीं करेगा, केवल संगठन करेगा, लेकिन संघ से प्रेरणा और संस्कार प्राप्त किये हुए स्वयंसेवक राष्ट्र

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करेंगे। वहाँ उपयुक्त कार्यों की रचना और विचारों का विकास करेंगे और इस तरह राष्ट्र का पुनर्निर्माण होगा। अब यह ठीक है, ऐसा कोई टाईमटेबल नहीं था कि किस समय कौन सी संस्था का निर्माण होगा। किन्तु सभी क्षेत्रों का यह विचार था। उनमें वनवासी क्षेत्र का भी विचार था।

वनवासी क्षेत्र में जो घटना हुई और माननीय बालासाहब देशपांडे जी जशपुर पहुँच गये वनवासी सेवा कार्य के लिये। वहाँ पहले वकालत शुरू की, बाद में उन्होंने कार्य शुरू किया। जशपुर के महाराजा साहब बालासाहब को बहुत आदर के साथ देखते थे व हर तरह की सहायता करते थे। उन्होंने छोटा सा आठ–दस उरांव जाति के विद्यार्थियों का स्कूल शुरू किया। कोई बड़ा काम नहीं था। बहुत दिनों से जशपुर मिशनरियों का केन्द्र था, इसलिये बालासाहब पर उनका रोष था। बालासाहब को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, इमरजेन्सी आयी। उस समय गुरूजी ने एक बात कही थी, वो कितनी ठीक थी इसका अनुभव हुआ। उन्होंने कहा था कि "भाई वनवासी कल्याण आश्रम इस नाम से संस्था तो शुरू करो लेकिन किसी भी राजनैतिक दल से संलग्न मत रखो और उसे राजकीय अनुदान पर मत चलाओ।" किसी भी राजनैतिक दल के साथ संबंध नहीं होने के कारण और राज्याश्रय पर काम नहीं करने के कारण इमरजेन्सी के समय कल्याण आश्रम कई संकटों से बच गया। इमरजेन्सी के बाद बालासाहब देवरस सरसंघचालक थे। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि वनवासी कल्याण आश्रम को अखिल भारतीय स्वरूप दिया जाये। संगठन मंत्री के नाते रामभाऊ गोड़बोले ने सारे भारत का दौरा किया और कल्याण आश्रम को अखिल भारतीय

प्रतिपदा के दिन बड़ी मुश्किल से चन्द्रकला दिखती है। परंतु कला बढ़ते बढ़ते जब पूर्णिमा आती है तो चारों ओर बढ़ते हुए प्रकाश से परिचय होता है, बगीचे में आता है, शयन कक्ष में आता है, हर कोना उस प्रकाश से भर जाता है। ऐसा ही संघ का है।

स्वरूप प्राप्त हुआ।

थोड़ा काम जमने के बाद दिल्ली में आयोजित वर्ग में, जिसमें वनवासी और वनवासियों में काम करने वाले लोग आये थे, नागालैण्ड से कांग्रेस के एम.एल.ए. को भी बुलाया गया। उन्होंने सबको देखा, बातचीत की। उन्होंने कहा, "हम भी ईसाई मिशनरियों का विरोध कर रहे हैं। हमने एन्टी क्रिश्चियन बनाया है। परंतु हम आप से मिलने वाले नहीं हैं, आप अपने ढंग से काम कीजिये, हम हमारे ढंग से काम करेंगे।" बाद में वे श्रीमती इन्दिरा गांधी से मिलने गये और सारी बात बताई।

जब इंदिरा गांधी ने कहा तब उनको लगा कि इस काम के साथ ज्यादा मेलजोल रखना अच्छा होगा। यह बहुत लोगों के लिये कल्पना करना भी कठिन है कि इन्दिरा गांधी ने इस तरह की भूमिका की होगी। वे बोलती नहीं थी पर उनके मन में यह था। यह कल्याण आश्रम के सब लोग उस समय जानते थे। संघ केवल संगठन करेगा, संघ के स्वयंसेवक कार्य का निर्माण करेंगे, यह पहले से तय हो गया। लेकिन विविध कार्यों का निर्माण करते समय कुछ दक्षता–सावधानी रखना आवश्यक है। यह भी पहले से ही सोचा गया कि कुछ परहेज रखना आवश्यक होगा, वर्ना विभिन्न क्षेत्रों में कुछ गड़बड़ियाँ पैदा होगी। इसके लिये त्रिविध पथ्य बताये गये :

1). हम जिस क्षेत्र में जायेंगे, उस क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के आदर्शों, सिद्धांतों के प्रकाश में ही काम करेंगे।

2). संघ ने हमें कुछ रीति–नीति, पद्धति, वायुमण्ड़ल और जीवन मूल्य सिखाये हैं, जिस क्षेत्र में हम जाते हैं, उस क्षेत्र में इसी की प्रतिष्ठा पैदा करनी है। ऐसा नहीं कि तत्कालीन लोकप्रियता के लिये औरों की तरह हम भी उन गन्दे मार्गों से काम करके यश प्राप्त करें।

मनुष्य का मन पीतल के बर्तन के समान है। उसको घिस घिस कर चकाचक कीजिये, जिससे आप अपना मुँह इसमें देख सकते हैं। चालीस साल लगातार घिसने के बाद एकाध महिना नहीं घिसा तो गंदा हो जायेगा। ऐसा ही स्वयंसेवक का है।

गुरूजी कहते थे कि तुम वहाँ क्यों जाते हो ? पहले से वहाँ काम करने वाले लोग ठीक से काम नहीं कर रहे हैं इसलिए न ? यदि तुम भी उनके गन्दे मार्गों से ही यश प्राप्त करोगे तो तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं है।

3). तीसरी महत्व की बात, जो प्रायः सभी लोग भूल जाते हैं। पहली गड़बड़ गुजरात में शंकरसिंह वाघेला के प्रकरण में हुई थी। मैं उसके बाद जब अहमदाबाद गया, संघ कार्यालय में 14- 15 लोगों के साथ चर्चा हुई। लोगों ने कहा, "हमें भाजपा में क्या होता है, इससे कोई लेना देना नहीं, लेकिन लोग हमको प्रश्न पूछते हैं कि वाघेला तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का संस्कारित स्वयंसेवक था। उसने ऐसी घपलेबाजी क्यों की ? हम इसका जवाब नहीं दे सकते।" मैंने कहा कि इसका मतलब यह हुआ कि तुम संघ के त्रिविध पथ्य भूल गये हो। तीसरा पथ्यः गुरूजी ऐसा कहते थे कि मनुष्य का मन पीतल के बर्तन के समान है। उसको घिस घिस कर चकाचक कीजिये, जिससे आप अपना मुँह इसमें देख सकते हैं। चालीस साल लगातार घिसने के बाद एकाध महिना नहीं घिसा तो गंदा हो जायेगा। ऐसा भी स्वयंसेवक का है। शंकरसिंह वाघेला क्या रोज संघ शाखा में जाता है ? यदि नहीं तो फिर संघ के संस्कार कैसे स्थायी रह सकते हैं ? संघ किसी को चरित्र का प्रमाण पत्र नहीं देता। चाहे वह जन्म से लेकर बुढ़ापे तक लकड़ी के सहारे चल कर रोज संघ शाखा में आ रहा हो।

कल्याण आश्रम के कार्य को अलग मत देखो। यह भी संघ का ही कार्य है। जैसे सेना नायक युद्ध के समय हर मोर्चे पर आवश्यकतानुसार अलग अलग प्रकार की व्यवस्था एवं रचना करता है वैसे ही सेना नायक संघ की यह कल्याण आश्रम संगठन भी एक व्यवस्था है। कल्याण आश्रम भी राष्ट्रवादी संगठनों में से एक कड़ी है। ❑

२

हर एक सत्र में अपने अपने कार्य के एक एक पहलु पर प्रकाश डालने का कार्य हो रहा है। आज मैं केवल कुछेक बिंदुओं के बारे में बोलने वाला हूँ। जब हम बातचीत करते हैं हमारे कार्य के बारे में, तो कुछ सावधानी रखनी आवश्यक है। हमारे विचार अच्छे हैं किन्तु उनको प्रकट करते समय कुछ सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। जैसे, हम जानते हैं कि देश में कुछ जागृति आ जाये, विदेशियों के बारे में, मिशनरियों के बारे में लोग सतर्क हो जायें, यह अपने कार्यों के उद्देश्यों में से एक है। कल्याण आश्रम ने अभी तक जो काम किया उसके कितने दूरगामी परिणाम हो गये, इसका अन्दाज़ा शायद कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं को भी नहीं था। नियोगी कमेटी की नियुक्ति कल्याण आश्रम के प्रयासों के कारण ही हुई थी। कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं ने जो साक्ष्य इकट्ठे करके दिये, कमेटी के सामने रखे, उसी के आधार पर रिपोर्ट तैयार हुई। माननीय कृष्णराव सप्रे, भीमसेन चौपड़ा आदि ने बहुत परिश्रम पूर्वक मिशनरियों के बारे में साक्ष्य इकट्ठे किये थे। उसी के आधार पर रिपोर्ट लिखी गयी थी। यदि नियोगी कमेटी की रिपोर्ट पर तुरंत क्रियान्वयन हो जाता तो आज उपस्थित कई संकट निर्माण ही न होते, ये भी लोग समझते हैं। पूर्वोत्तर भारत में मिशनरियों के

कल्याण आश्रम ने अभी तक जो काम किया उसके कितने दूरगामी परिणाम हो गये, इसका अन्दाज़ा शायद कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं को भी नहीं है। नियोगी कमेटी की नियुक्ति कल्याण आश्रम के प्रयासों के कारण ही हुई थी। कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं ने जो साक्ष्य इकट्ठे करके दिये, कमेटी के सामने रखे, उसी के आधार पर रिपोर्ट तैयार हुई।

कारण जो वायुमण्डल तैयार हुआ, वह मूलतः उत्पन्न ही न होता। दुर्भाग्य की बात थी कि रिपोर्ट आयी उसी समय मध्यप्रदेश का विभाजन हुआ। पहले मुख्यमंत्री रविशंकर शुक्ल जी के निधन होने के बाद में जो सरकार बनी वह धर्म निरपेक्षता के नाम पर हिन्दुत्व विरोध की नीति लेकर चली। उस सरकार ने उस रिपोर्ट को ठण्डे बस्ते में डाल दिया और अमल नहीं हुआ।

किंतु ईसाई मिशनरियों ने वह रिपोर्ट पूरी तरह से पढ़ी। हिन्दुत्व वादी लोगों ने नहीं पढ़ी। मेरी तरह के जो बहुत थोड़े लोग हैं, उन्होंने पढ़ी। यद्यपि रिपोर्ट को ठंड़े बस्ते में डाल दिया और क्रियान्वयन करने से रोक दिया, तो भी रिपोर्ट का प्रभाव मिशनरियों पर रहा। रिपोर्ट के प्रकाश में उन्होंने अपने कार्यकलापों की विधि को ही बदल दिया। परंतु यह परिणाम अपने लोगों के भी ध्यान में नहीं आया।

अभी बीच में आपने अखबारों में पढ़ा है कि अखिल भारतीय अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य जॉन जोसेफ ने स्वयं अपने सर संघचालक परम पूजनीय श्री सुदर्शनजी से मिलने की पहल की। फिर उनको लगा कि संघ के बारे में गलत फहमी फैलाई जा रही है तो दिल्ली में कुछ ईसाई नेताओं को लेकर सुदर्शनजी से मिले। ऐसा मत समझिये कि ये सारे विदेशी, मिशनरी एक जैसे हरामखोर हैं, बदमाश हैं, उनको आप जितनी गालियाँ देना चाहें दीजिए। लेकिन सारा ईसाई समाज इनके पीछे है, ऐसी बात नहीं है। कई सज्जन हैं, देशभक्त हैं। बाद में जॉन जोसेफ ने एक विस्तृत बैठक नागपुर में आयोजित की। सुदर्शनजी से मिले। उन्होंने संतोष प्रकट किया कि इस विषय में आर.एस.एस. की भूमिका ठीक है। प्रमुख रूप से धर्मांतरण के बारे में चर्चा थी। कोच्चि और मुंबई के आर्कबिशपों ने भी प्रकट रूप से यही बात कही जो हम लोग कहते हैं कि जबरदस्ती और प्रलोभन से धर्मांतरण नहीं होना चाहिए। इसके

नियोगी कमेटी की रिपोर्ट पढ़ने के बाद हम लोगों को पता चला कि कितना घृणित देश विरोधी कार्य ये लोग कर रहे हैं। तब हमारी आंखें खुली और इसके कारण कुछ जनमानस अपने अनुकूल निर्माण हुआ।

बारे में एक सर्वंकेशी पुस्तिका नागपुर के अपने स्वयंसेवक विराज पाजपो ने लिखी थी। उसका विमोचन सुदर्शनजी के हाथों होने वाला था। उस समारोह के अध्यक्ष के नाते केरल के एक ईसाई नेता जोसेफ कुन्डिकुन्नु को बुलाया था। वो ईसाईयत और बाईबल के बारे में ऑथोरिटी है। उनका अध्यक्षीय भाषण सुन सभी समाचार पत्र वालों को आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में उन्होंने स्पष्ट रूप से, जो बात हम बोलते हैं वही बोली। यह सब चल रहा था तो उस समय जॉन जोसेफ ने हमको नाश्ते के लिये बुलाया। मैं गया था। काफी अच्छी चर्चा हुई। उन्होंने जो एक बात बताई, सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, "हमारे जैसे देशभक्त जो लोग हैं, उनको भी पहले पता नहीं था। हम समझते थे कि ठीक है, ईसाईयत का प्रचार कर रहे हैं। नियोगी कमेटी की रिपोर्ट पढ़ने के बाद हम लोगों को पता चला कि कितना घृणित देश विरोधी कार्य ये लोग कर रहे हैं। तब हमारी आंखें खुली और इसके कारण कुछ जनमानस अपने अनुकूल निर्माण हुआ। यह जो महान कार्य है वह ही नियोगी कमेटी की रिपोर्ट का दूरगामी परिणाम है। इसका पूरा श्रेय कल्याण आश्रम को जाता है। बालासाहब देशपांड़े तो हैं ही लेकिन साथ ही साथ साक्ष्य जुटाने वाले माननीय कृष्णराव सप्रे और भीमसेन चौपड़ा जैसे संघ के प्रचारकों के कार्य की यह फलश्रुति है। यह बात शायद कल्याण आश्रम के कार्यकर्ताओं की जानकारी में भी नहीं होगी, क्योंकि मुझे भी नहीं थी। यह एक महत्व की बात है कि उनकी भी आंखें तब खुली (देशभक्त मिशनरियों की) जब नियोगी कमेटी की रिपोर्ट उन्होंने पढ़ी।

इस विषय में जब हम लोग बात करते हैं तो ध्यान में रखना चाहिए कि हम जीसस क्राइस्ट को इन हरामखोरों के साथ एक लाईन में न बिठायें। हमको इन हरामखोरों का तो हर तरह से विरोध करना ही है क्योंकि इनके माध्यम से ही देश को खंडित करने के प्रयास चल रहे हैं। यूरोप और अमेंरिका से आने वाले पैसे के आधार पर ये विदेशियों की योजना पर काम कर रहें हैं। यह सब ठीक है लेकिन क्राइस्ट के बारे में अनादर प्रकट न करें

क्योंकि उनका इन हरामखोरों के साथ कोई संबंध नहीं है। क्राइस्ट एक श्रेष्ठ संत थे और उन्होंने चर्च का प्रारंभ नहीं किया। चर्च का प्रारंभ तो उनकी मृत्यु के कई दशकों के बाद सेन्ट पॉल ने किया। आपको आश्चर्य होगा कि क्राइस्ट और क्रिश्चियनिटी इन दोनों शब्दों का प्रयोग क्राइस्ट की मृत्यु के कई साल बाद शुरू हुआ। अतः उस श्रेष्ठ संत का नाम इनके साथ जोड़ने का काम हम ना करें।

अब ऐसा है कि अंग्रेजी प्रेस खासकर संघ के विरोध में है। इसके कारण व विदेशी मिशनरियों के जधन्य कृत्यों के कारण स्थानीय लोग भी उनके उपर हमला करते हैं। किंतु जैसे ही हमले की खबर पहुँचती है तो अंग्रेजी प्रेस खबर देता है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद् ने यह काम किया है। जब जांच होने के बाद निर्णय होता है कि संघ का या विश्व हिन्दू परिषद् का इसमें कोई हाथ नहीं है तो ये प्रेस वाले प्रकाशित नहीं करते या फिर करते हैं तो एक कोने में चार लाईन में प्रकट करेंगे जो किसी के भी ख्याल में नहीं आयेगा। यानि इस तरह शरारतपूर्वक अपने खिलाफ जानबूझकर प्रचार करने का कार्य अंग्रेजी प्रेस कर रहा है। इस कारण बोलते समय अपनी भाषा में विवेक रहना, संयम रहना, औचित्य रहना, यह बहुत आवश्यक हो जाता है।

हमारे यहाँ तो किसने धर्म का निर्माण किया है, मालूम नहीं है। वेदों में इतनी ऋचाएं हैं, उपनिषद हैं, परंतु इसके कोई निर्माता है, ऐसी बात नहीं है। इसकी कोई खास किताब है ऐसा भी नहीं है। स्वर्ग की कल्पना भी सबकी एक सी नहीं है। अलग–अलग लोग अलग–अलग पद्धति को स्वीकार करते हैं।

हम शब्द प्रयोग के बारे में भी जरा ध्यान रखें। सामान्यतः हम कहते हैं कि इतने ईसाईयों का धर्मांतरण किया गया और ईसाईयों को हिन्दू बनाया गया। बात ठीक है। इसमें गलती नहीं है। किन्तु हिन्दू शब्द के बारे में ध्यान रखने की आवश्यकता है। हम भी न समझते हुए 'हिन्दू' शब्द को भी इस्लाम, जुड़ाईज्म,

क्रिश्चियानिटी–इनके स्तर पर रख देते हैं। इन तीनों को रीलीज़न कहा जाता है। इन सबके प्रारंभकर्ता अब्राहम नाम के व्यक्ति थे। उन्होंने जुड़ाइज्म यानि यहूदी धर्म का निर्माण किया। जुड़ाइज्म में ही ऑल्ड टेस्टामेंट है। बाद में जो उन्होंने धर्म तत्व दिये उनको लेकर ईसा मसीह ने उसका प्रचार किया। बाद में अब्राहम के और जीसस के ही सिद्धांतों को लेकर इस्लाम में मोहम्मद द प्रोफेट के सिद्धांत बनाये गये। तो एक तरह से इन तीनों के प्रणेता के नाते अब्राहम को देखा जा सकता है। यद्यपि इनमें भी आपस में लड़ाईयाँ तो बहुत हुई। ईसाईयों और मुसलमानों के तो कई बार धर्मयुद्ध हुए। किन्तु सामान्यतया हम इन तीनों के समकक्ष हिन्दूधर्म को बताते हैं, यह गलत बात है। ये सेमेटिक रीलिजन हैं। रीलिजन यानि उपासना पद्धति। सेमेटिक यानि 'हम ही सत्य हैं, बाकी सब झूठ है।' "नान्यः दस्तिति मन्यते" ऐसा कहने वाली असहिष्णु, इस तरह की ये तीनों उपासना पद्धतियाँ हैं। हिन्दू ऐसी उपासना पद्धति नहीं है। हम कहते हैं कि हमारा धर्म अच्छा है और इसका स्वरूप इनसे उपर है। हाँ! हिन्दू एक उपासना पद्धति भी है। रीलिजन में होता है एक पिता, एक स्वर्ग का भगवान–यानि एक स्वरूप प्रेषित है। हमारे यहाँ तो किसने धर्म का निर्माण किया है, मालूम नहीं है। वेदों में इतनी ऋचाएं हैं, उपनिषद् हैं, परंतु इसके कोई निर्माता है, ऐसी बात नहीं है। इसकी कोई खास किताब है ऐसा भी नहीं है। स्वर्ग की कल्पना भी सबकी एक सी नहीं है। अलग–अलग लोग अलग–अलग पद्धति को स्वीकार करते हैं। इसलिये गांधीजी ने कहा कि Hinduism में there is a scope for Jesus Christ, Jehova, Mohammadan and Zerostrians । इन सबके लिये हिन्दूधर्म में स्थान है। इसका कारण है कि यह एक धर्म नहीं है। इसको चाहें तो Federation of religions यानि सब रीलिजन का एक महासंघ बन सकता है। लेकिन स्वयं रीलिजन नहीं है। सब हिन्दू हैं। जो जो अपने को कुछ नहीं बताते वे भी सब हिन्दू हैं। यहाँ तक कि हमारे वेदों पर टीका करने वाले बृहस्पति और चार्वाक तक सब। भौतिकी तत्वज्ञान (Materialistic Philosophy) का प्रारंभ, लोग कहते हैं कि 2000 साल पहले

डेमोक्रेट्स ने अमेरिका में किया। परंतु डेमोक्रेट्स से कई हजार वर्ष पूर्व भौतिकी तत्वज्ञान का जन्म हिन्दुस्थान में हुआ। देवों के गुरू बृहस्पति ने जो सूत्र दिया : 'असतो सत् अजायते'–अनस्तित्व में से अस्तित्व आया–out of non-existence emerge the existence। यह अब पश्चिम के लोग भी मानने लगे हैं कि भौतिकी तत्वज्ञान का यह पहला सूत्र रहा। आज हमारे यहाँ जितनी उपासना पद्धतियाँ हैं, सबकी निन्दा हो गई। यहाँ तक कहा गया कि स्वर्ग नहीं है, अपवर्ग नहीं है। वर्णाश्रम वगैरह यह सब झूठ है और चार्वाक ने यहाँ तक कहा कि "त्रयो वेदस्य कर्तारः धूर्त भण्ड निशाचरः"। जिन तीन लोगों ने वेद निर्माण किये वे धूर्त लोग थे। भण्ड यानि पाखंडी और निशाचर यानि राक्षस थे। यानि ऐसे लोग थे वेद निर्माण करने वाले--अब ये सारा कहने वाले चार्वाक भी हिन्दू ही हैं। बृहस्पति भी हिन्दू हैं। सुप्रीम कोर्ट ने जैसा कहा है कि Hindu is not a religion, it is the way of life। यह एक जीवन पद्धति है इसमें आने वाले सभी रीलिजन के लोग हिन्दू हैं। उपमा ही देनी हो तो मैं कहूंगा, जैसे आपके यहाँ किराणा माल की दुकान होगी, शायद दक्षिण में हम उसको और किसी नाम से पहचानते होंगे, इस किराणा दुकान में कई चीज़ें मिलती है लेकिन आप यदि वहाँ सौ का नोट लेकर गये और कहा कि मुझे किराणा नाम की वस्तु दीजिये, तो वह नहीं मिलेगी क्योंकि 'किराणा' नाम की कोई वस्तु नहीं है। किराणा नाम के छाते के अन्तर्गत 200–250–300 चीजें आ सकती हैं। वैसे ही अर्थ हिन्दू शब्द का है। हिन्दू कोई रीलिजन नहीं है। कितने ही धर्म (उपासना पद्धतियाँ) इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

इस किराणा दुकान में कई चीज़ें मिलती है लेकिन आप यदि वहाँ सौ का नोट लेकर गये और कहा कि मुझे किराणा नाम की वस्तु दीजिये, तो वह नहीं मिलेगी क्योंकि किराणा नाम की कोई वस्तु नहीं है। किराणा नाम के छाते के अन्तर्गत 200–250–300 चीजें आ सकती हैं। वैसे ही अर्थ हिन्दू शब्द का है। हिन्दू कोई रीलिजन नहीं है। कितने ही धर्म (उपासना पद्धतियाँ) इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

दु:ख की बात है कि हमारे ही लोग इसके बारे में जानते नहीं हैं। मुझे इसका एक अनुभव हुआ। मैं उस समय झण्डेवाला में रहता था। कोई 20 वर्ष पहले एक दिन एक प्रोफेसर का फोन आया "मुझे युनिवर्सिटी में प्रोफेसर और पोस्ट ग्रेज्युएट स्टूडेन्ट्स के सामने हिन्दुत्व पर भाषण देना है। वैसे तो मैंने सारी तैयारी कर ली है पर कुछ माइनस पोइंट हैं जो आपसे डिसकस करने हैं। "मैंने कहा," आईये।" वे आये। कहा, दुनिया में सभी रीलिजन अपना अपना प्राचीनत्व ज्यादा से ज्यादा बताने का प्रयास करते हैं। किन्तु हमारे हिन्दू शब्द के प्राचीनत्व का उल्लेख कहीं नहीं मिलता, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत किसी में नहीं मिलता। यही एक बड़ा माइनस पोइंट है। मैंने कहा, मानइस पोइंट है या प्लस पोइंट है। हमारे यहाँ यह प्राचीनत्व क्यों नहीं है, इसका विचार किया क्या ? क्योंकि दुनिया में सर्वप्रथम हिन्दू राष्ट्र का ही निर्माण हुआ किन्तु हम हिन्दुओं ने अपने को मानवता के साथ एकात्म किया। हम खुद को मानव के नाते ही सोच विचार करते थे। हिन्दू और ह्युमन दोनों पर्यायवाची – समानार्थी हैं। हमने जितनी प्रार्थनाएं की, वह हम हिन्दू प्रार्थना करते हैं ऐसा नहीं कहा। हमने मानवता के नाते प्रार्थना की है कि सभी मानवों को सुखी होना चाहिए, सभी मानवों को सारी सम्पति उपलब्ध होनी चाहिए; अच्छे मानवों का दुष्ट मानवों से संरक्षण होना चाहिये, यानि मानवता के नाते ही हमने विचार किया। अपनी अलग पहचान हमने कभी रखी ही नहीं। तो यह अलग आइडेन्टिटी कब से आई ? दुनिया की पीठ पर जब, कुछ ऐसे समाज निर्माण हुए जो मानवजाति से अलग अपना अस्तित्व रखना चाहते थे, और इतना ही

जब तक मुसलमान अपना झण्डा खड़ा करेंगे, ईसाई अपना झण्डा खड़ा करेंगे, फ्रेंच और ब्रिटिश अपने अपने झण्डे खड़े करेंगे तब तक मैं अपने हिन्दू राष्ट्र का भी झण्डा खड़ा करूंगा। जब ये सारे झण्डे नीचे लायेंगे तब मैं सब से पहले अपना झण्डा नीचे लाने के लिये तैयार रहूंगा क्योंकि हम मानवतावादी हैं"–कट्टर हिन्दुत्ववादी सावरकर जी ने ही यह बात कही।

नहीं तो तलवार के जोर पर अपना अलग अस्तित्व बाकी मानव जाति पर थोपने का प्रयास कर रहे थे, ऐसे पृथकतावादी लोग जब हमारे देश में आये तो अपने को अलग कैसे पहचाना जा सके यह प्रश्न आया। पहले हमने अलग पहचान नहीं रखी परंतु जब लोग हाथ में तलवार लेकर आये तो हम ये नहीं हैं, हम इनसे भिन्न हैं यह दिखाने की चिन्ता अपने लोगों को हुई। परंतु अपने लिये भिन्न शब्द 'हिन्दू' यह भी विदेशी लोगों ने निकाला। सिंध J से हिन्दू। अफगानिस्तान में 'स' का 'ह' होता है, और ग्रीस में गये तो Indus हो गया। तो विदेशियों ने ही हिन्दू शब्द निकाला था। तो हिन्दू शब्द को प्राचीनत्व नहीं है यह बात तो गौरवपूर्ण है कि हम सम्पूर्ण मानवता के साथ एकात्म होकर विचार करते रहे, आज भी कर रहे हैं।

स्वातंत्र्यवीर वीर सावरकर ने कहा है कि "यह धरती हमारी माता है। यहाँ रहने वाले सारे मानव मेरे बंधु हैं। किन्तु जब तक मुसलमान अपना झण्डा खड़ा करेंगे, ईसाई अपना झण्डा खड़ा करेंगे, फ्रेंच और ब्रिटिश अपने अपने झण्डे खड़े करेंगे तब तक मैं अपने हिन्दू राष्ट्र का भी झण्डा खड़ा करूंगा। जब ये सारे झण्डे नीचे लायेंगे तब मैं सब से पहले अपना झण्डा नीचे लाने के लिये तैयार रहूंगा क्योंकि हम मानवतावादी हैं'—कट्टर हिन्दुत्ववादी सावरकर जी ने ही यह बात कही।

मैं 1936 में अपने गाँव से नागपुर हाईस्कूल से कॉलेज की पढ़ाई के लिये आया। हम भी उस समय प्रगतिशील रूमानी (romantic) लोगों में से थे। शाखा जाते नहीं थे। तो 10–12 लोगों के साथ बाज़ार में घूमने जाते थे। मार्केट में हमने देखा कि घी की कई दुकानें रहती थीं। बोर्ड रहता था 'वर्धा से आया हुआ घी', 'बुलढ़ाणा का घी', 'अमरावती के घी की दुकान'—यानि एक–एक गांव के नाम से घी बिकता था। 1941 में जब नागपुर छोड़ने का प्रसंग आया, उस समय बाज़ार घूमने गये तो उन साईनबोर्ड में कुछ अन्तर दिखा: 'वर्धा के शुद्ध घी की दुकान', 'अमरावती के शुद्ध घी की दुकान', 'बुलढ़ाणा के शुद्ध घी की दुकान'....आदि। हमने पूछा कि पहले तो ऐसा नहीं था, यह 'शुद्ध घी' क्यों लिखा तो उत्तर मिला, नागपुर में आने वाला सब घी

पहले शुद्ध ही होता था, इसलिए उसमें 'शुद्ध' लगाने की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन महायुद्ध के दौरान 'वनस्पति', 'डालड़ा' जैसी चीज़ें आने लगी तो हमारा घी वनस्पति या डालडा नहीं है, शुद्ध है, इस बात की जानकारी हो इसलिए यह लिखना पड़ा।

वैसे ही हम मानवतावादी तो थे लेकिन ये जो डालड़ा, वनस्पति (मुस्लिम–ईसाई) हिन्दुस्तान में आ गये तो हम उन से भिन्न हैं यह दिखाने के लिये 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग हुआ। इसलिये हिन्दू शब्द जब आता है तो उसके विषय में हमें सावधानी रखनी चाहिये। हम ऐसा न कहें कि इनको हमने हिन्दू बना लिया। हम कहें, "यह पुनरागमन है।" यानि घर वापसी। मुझे युनियन के लिये वनवासी क्षेत्र में भी जाने का कई बार मौका मिलता था। तो एक psychology (मनः स्थिति) का मैंने निरीक्षण किया। आप किसी वनवासी जनजाति को कहो कि आप हिन्दू बन जाओ तो आप के ध्यान में आयेगा, कि शब्द का कितना महत्व होता है। वे सोचते हैं, अरे! पहले क्रिश्चियन आये थे उन्होंने कहा "क्रिश्चियन बन जाओ", हम बन गये। अब ये आये तो बोल रहे हैं 'हिन्दू बन जाओ'। नतीजा क्या हुआ? रेड इण्डियन बोलते हैं, कि जब यूरोप से अमेरिका में क्रिश्चियन आये तब उनके हाथ में किताब थी–बाईबल, और हमारे हाथ में हमारी जमीन। परंतु आज स्थिति बदल गई है। आज हमारे हाथ में उनकी किताब है और उनके हाथ में हमारी जमीन। इसी तरह का अनुभव भी कुछ हिन्दुस्थान में आता है। तो वनवासी की ऐसी मनः स्थिति बनती है कि भाई क्रिश्चियन ने आकर पहले शोषण किया, अब ये नये मुल्ला आये हैं, अब

हरेक जनजाति का अपना एक धर्म है, पूर्वज है, देवता है, परंपरा से चलते आये रीति–रिवाज़ हैं। अपना धर्म ईसाईयत से भी श्रेष्ठ है। आप अपने देवताओं की पूजा कीजिये, अपने रीति–रिवाज़ मनाईये, अपनी उपासना पद्धति अपनाईये। अपना धर्म कहीं से भी क्रिश्चियन से कनिष्ठ, खराब या गलत नहीं है। यदि यह हो गया तो हिन्दू धर्म में आना ही हो गया।

ये हिन्दू पादरी हमारा शोषण करेंगे। ऐसी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। तो हमें बोलते वक्त सावधानियाँ रखनी चाहिए। लम्बा चौड़ा भाषण देने की आवश्यकता नहीं है कि हमारा हिन्दुत्व क्या है? हमें कहना चाहिये, आप अपने धर्म में आइए। हरेक जनजाति का अपना एक धर्म है, पूर्वज है, देवता है, परंपरा से चलते आये रीति–रिवाज़ हैं। अपना धर्म ईसाईयत से भी श्रेष्ठ है। आप अपने देवताओं की पूजा कीजिये, अपने रीति–रिवाज़ मनाईये, अपनी उपासना पद्धति अपनाईये। अपना धर्म कहीं से भी क्रिश्चियन से कनिष्ठ, खराब या गलत नहीं है। यदि यह हो गया तो हिन्दू धर्म में आना ही हो गया। हिन्दू बनाना ऐसी क्रिश्चियनगिरी करने की आवश्यकता नहीं। 5–10 साल बाद उनको पता चलेगा–हमारा सम्पर्क भी रहेगा–कि हम सब हिन्दू थे, हिन्दू हैं और रहेंगे। यह जो बताया जाता है कि हिन्दू–आर्य–बाहर से आये, हमारे उपर आक्रमण किया इत्यादि झूठ है। यह सब बातें आप फिर उनको बतायेंगे तो हिन्दू मानने में वे गौरव का अनुभव करेंगे। इसलिए बोलते समय सावधान रहने की आवश्यकता है।

जिस समय कल्याण आश्रम का कार्य प्रारंभ हुआ तो क्रिश्चयन की तरह लालच देने की स्थिति में नहीं था कल्याण आश्रम। परंतु कल्याण आश्रम का आधार आध्यात्मिकता का था, दिव्यता का था। यह अपना ईश्वरीय कार्य है, इस विश्वास के साथ प्रारंभ हुआ था। spritual का मतलब होता है कि धार्मिकता या ईश्वरत्व का साक्षात्कार करने की इच्छा, इस आधार पर इसका प्रचार हुआ है। पहले बहुत लोगों ने (अपने ही लोगों ने) आशंकायें प्रकट की थी कि जब तक कुछ भौतिक बातें आप उनको नहीं दे सकते, कैसे आयेंगे ? लेकिन कल्याण आश्रम में अनुभव हुआ कि भौतिकता से जितने लोग आ सकते हैं उससे भी ज्यादा लोग आध्यात्मिकता के कारण आ सकते हैं। इसलिये कल्याण आश्रम ने कई कार्यक्रम किये, यज्ञ किये और 'भाव जागरण'–यह अपना लक्ष्य रखा। बड़े–बड़े संतों को बुलाया। गहिरा गुरूजी, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आदि आदि और धर्म जागरण किया। हजारों लोग ईसाईयत छोड़कर अपने पास आये। भाव जागरण का मतलब है कि सभी

लोगों को spiritualism की प्रेरणा दी जावे। किंतु साथ ही साथ वनवासियों की सर्वांगीण उन्नति हो इस दृष्टि से भी विचार किया गया।

अन्य देशों के विचारकों ने सोचा कि जो पिछड़ी जाति है उसको उठाना है तो सबसे पहला कदम उठाया उस जाति के लोगों को शिक्षा देना, विद्या देना। अमेरिका में वॉशिंग्टन ने पिछड़े हुए नीग्रो लोगों को उपर लाने की सोची तो अपनी ताकत नीग्रो लोगों को शिक्षा देने में लगाई। हमारे देश में भी ज्योतिबा फूले, राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, भाऊराव पाटिल, पंजाब राव आदि ऐसे कितने ही लोग हुए जिन्होंने देखा कि जब तक पिछड़े लोगों को शिक्षा नहीं दी जाती तब तक वो ऊपर आने की क्षमता नहीं रखेंगे। तो शिक्षा संस्थाओं का निर्माण यह सबसे पहली सीढ़ी है। कल्याण आश्रम ने भी इधर ध्यान दिया। तो स्कूल, छात्रावास आदि शुरू हुए। पर हमें लगता था कि कोई बालक आयेगा नहीं, लेकिन धीरे धीरे स्कूलों में भर्ती होने लगी। पढ़ाने के लिये कुछ मानवतावादी, वनवासियों से प्रेम करने वाले शिक्षक भी तैयार हुए। इस तरह धीरे धीरे संस्था संसार यानि कल्याण आश्रम संसार तैयार हुआ।

छात्रावास–पाठशाला आदि शिक्षा संस्थाओं का निर्माण होना, ये तो पहली सीढ़ी थी। इसके माध्यम से प्रत्यक्ष वनवासियों में जाकर उनके साथ रहते हुए उनको अपने विचार देना। इसी से भावजागरण हो सकता है। परंतु पूरा काम तो है वनवासियों में पूर्ण जागृति लाना। हम हिन्दू हैं यह भावना जागृत होनी चाहिए और हिन्दुस्तान के राष्ट्रीयत्व के जो प्रमुख प्रवाह हैं एक रूप होने चाहिए। तो हमारे कार्य में संतुलन रखने की आवश्यकता है। यानि हमारा काम तो है भाव जागरण। विस्तृत काम है–पूर्ण वनवासी समाज को जागृत करना और पहली सीढ़ी है–संस्थाओं का निर्माण। कभी–कभी हम यह संतुलन खो देते हैं। ये जो

परंतु पूरा काम तो है वनवासियों में पूर्ण जागृति लाना। हम हिन्दू हैं यह भावना जागृत होनी चाहिए और हिन्दुस्तान के राष्ट्रीयत्व के जो प्रमुख प्रवाह हैं एक रूप होने चाहिए।

प्रकल्प हैं, यही हमारा कार्य है इस कारण इन को कैसे चलाना, यही चिंता का विषय हो जाता है और जो मुख्य बात है, वह आँखों से ओझल हो जाती है और काम को करने में हमारी सारी शक्ति खर्च हो जाती है। तथा कभी–कभी इसके कारण हमारे विचारों में गड़बड़ी भी आ जाती है।

अब गड़बड़ क्या होती है ? प्रकल्प के लिये धन चाहिए। उसके लिये पैसे वालों से संबंध बनाना है। अब दो तरह के पैसे वाले हैं। भीमसेन चोपड़ा कलकत्ता से पैसे लाये, ये अलग बात है किंतु हमारे छोटे–बड़े जो कार्यकर्ता हैं, वो कहीं से भी पैसा लाना चाहिये, ऐसा सोचते हैं। आप जरा इसका विचार करिये। हमें वनवासियों का सर्वांगीण विकास करना है, वनवासी की समस्या क्या है, इसका विचार हमने किया है क्या ?

हमारे मज़दूर संघ ने 1969 में राष्ट्रपति वी.वी. गिरी को मेमोरेण्डम दिया था, क्योंकि उसमें वनवासी श्रमिक की समस्या का अध्ययन भारतीय मज़दूर संघ का था, इसलिए विवरण में पूरा अध्याय 'वनवासी श्रमिक' का था। अब यह जो सारी छोटी–छोटी समस्याएं हैं, जैसे, पहले उनके परंपरागत अधिकार थे कि जंगल की लकड़ी लाना, दूसरा कोई नहीं ला सकता–ऐसे कई अधिकार थे वो छिन गये। कानून उनके खिलाफ बनाये गये। अब यदि इन बातों का प्रतिकार करना हो, जैसे, वो बड़ी मेहनत से जो फॉरेस्ट प्रोडक्ट (जंगल में पैदा होने वाली चीजें) इकट्ठा करते हैं और बेचते हैं। व्यापारी दो रू. में वह चीज़ खरीदता है और शहर में जाकर वही चीज़ पचास रू. में बेचता है। बेचारा वनवासी तो इसी थोड़े से में ही खुश हो जाता है परंतु यह जो शोषण है, इससे मुक्ति होनी चाहिये। यह हमारे वनवासी कल्याण आश्रम का कर्तव्य है क्योंकि वनवासियों की सर्वांगीण प्रगति हो, यह हमारा लक्ष्य है। अब शहर से पैसा लाना एक अलग बात है, क्योंकि शहर के लोग यहाँ आकर शोषण नहीं करते। किंतु वनवासी क्षेत्र में

क्योंकि शहर के लोग यहाँ आकर शोषण नहीं करते। किंतु वनवासी क्षेत्र में रहने वाले व्यापारियों से यदि आप पैसा लायेंगे तो वो जब शोषण करेंगे तो आप उनके खिलाफ कैसे बोल सकेंगे?

रहने वाले व्यापारियों से यदि आप पैसा लायेंगे तो वो जब शोषण करेंगे तो आप उनके खिलाफ कैसे बोल सकेंगे ? कैसे आन्दोलन करेंगे? क्योंकि कहावत है कि जिससे पैसा लेते हैं उससे आंख से आंख मिलाना कठिन हो जाता है। इसलिए यदि इन शोषण करने वाले लोगों से वनवासी को मुक्त करना है तो हमें उनसे संघर्ष करना पड़ेगा। हमें विवेक रखना ही चाहिये कि ऐसे शोषक व्यापारी चाहे कितना ही पैसा देने को तैयार हो, उनसे पैसा लेना ही नहीं, यह निश्चय करना चाहिये।

हमारा प्रमुख कार्य भाव जागरण का है और प्रमुख काम के नाते यह पहली स्टेज है, इस नाते इसका बहुत महत्व है। प्राईमरी स्कूल हो, हॉस्टल हो, इनका बहुत महत्व है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन यह सब महत्व स्वीकार करते हुए भी वाकई भावजागरण हो और हम किसी के पैसे के दबेल ना हो जायें, यह देखना आवश्यक है। तो ऐसी कुछ सावधानियाँ हमें रखनी चाहिये। ❑

३

कानून की दृष्टि से हम एक संस्था हैं। कानून की परिधि में रह कर हम काम कर रहे हैं इसलिये उसकी जो विधाएं होती हैं, उनकी पूर्ति भी कर रहे हैं, जैसे रजिस्ट्रेशन कराना है, रिटर्न भरना है, आदि आदि। तो कानूनी भाषा में हम एक संस्था हैं। किन्तु वास्तविकता में हमारा स्वरूप संस्था का नहीं, परिवार का है। संस्था और परिवार में कुछ भेद होता है। परिवार का आधार पारिवारिक भाव ही है, संस्था का आधार संविधान होता है। अब कानून की आवश्यकता के नाते हमने भी संविधान बनाया। परिवार में भी कुछ व्यवस्थायें होती हैं। जिन्हें जो काम करना है, वह वे ही करते हैं। फिर भी किसी परिवार में आपने ऐसा नहीं देखा होगा कि रसोई घर के दरवाजे पर उसका संविधान लिखा हो, जैसे पिताजी को यह काम करना, माताजी को वह, बेटे का ऐसा, बहू का वैसा। इनका ये कर्तव्य या उनका ये अधिकार, ऐसा कुछ नहीं फिर भी दफ्तर जाने वाले जाते हैं, जिन्हें रसोई बनानी हैं वे बनाते हैं। बिना संविधान के भी कोई अव्यवस्था नहीं। तो संविधान की आवश्यकता थी, इसलिये बनाया लेकिन संविध ान हमारा आधार नहीं होता। हमारा आधार है पारिवारिक भाव। पारिवारिक भाव रहेगा तो संविधान की आवश्यकता नहीं होगी। परंतु पारिवारिक भाव नहीं रहेगा तो संविधान का उपयोग संस्था के टुकड़े–टुकड़े करने के लिय होगा। एक–एक बिन्दु (clause) झगड़े निर्माण

तो संविधान की आवश्यकता थी, इसलिये बनाया लेकिन संविधान हमारा आधार नही होता। हमारा आधार है पारिवारिक भाव। पारिवारिक भाव रहेगा तो संविधान की आवश्यकता नहीं होगी। परंतु पारिवारिक भाव नहीं रहेगा तो संविधान का उपयोग संस्था के टुकड़े–टुकड़े करने के लिये होगा।

करने के लिये होता है।

कई लोगों का ऐसा खयाल है कि परिवार है तो फिर परिवार में सब लोगों का सब विषयों पर एक ही मत होना चाहिए। एक ही अभिप्राय, एक ही प्रतिक्रिया होनी चाहिए। सब लोगों के सब विषयों पर एक समान विचार होने चाहिए। तभी तो परिवार माना जा सकता है। परन्तु यह सोच पश्चिमी विचारों के प्रभाव के कारण है। पश्चिमी लोग एकता और एकरूपता (uniformity) में अन्तर नहीं करते। एकता का ही एकरूपता समझते हैं। एकरूपता यानि एकरूपता और एकता यानि एकता। वे सोचते हैं कि यदि एकता हो तो सब समान (uniform) होने चाहिए और यदि समान एकरूपता नहीं तो एकता भी नहीं परन्तु हमारे यहां ऐसा सोच नही है। हम सोचते हैं कि एकता के लिय एकरूपता आवश्यक नहीं है। हमारी सोच है कि अलग–अलग व्यक्ति हैं, अलग–अलग स्वभाव है, अलग–अलग अनुभव हैं; अलग–अलग परिस्थितियों में से निकले हुए हैं तो हर बात पर सबकी प्रतिक्रिया एक होगी ऐसा नहीं है। जैसे हमारी पांच उँगलियां हैं, पांचों समान नहीं है परन्तु मुठ्ठी बांधने पर एक हो जाती है। पांचों उंगुलियों को एक सा (uniform) बनाने की आवश्यकता नहीं है। कांट–छांट करने की आवश्यकता नहीं है। मुट्ठी बांधने से एकता आ जाती है। इसी तरह एकता मुठ्ठी के समान है। तो मुठ्ठी की तरह एकता होनी चाहिए। हरेक के स्वभाव विशेष के कारण, अनुभव विशेष के कारण अलग विचार, अलग प्रतिक्रिया हो सकती है।

इतना मतभेद हुआ पांडवों में परंतु इसके कारण दो धड़े हो गये हों ऐसा नहीं। उनकी एकता कायम थी, मतभेद था, मनभेद नहीं था।

इसका आदर्श उदाहरण पांडवों का है। पाण्डवों में हमेशा घनिष्ठ पारिवारिक संबंध था। परन्तु ऐसा नही था कि उनमें मतभेद नहीं होता था। द्रौपदी चीर–हरण का ही प्रसंग ले लीजिए। भीम दादा ने युधिष्ठिर से कहा कि मैं अभी इस दुर्योधन को गदा से मारता हूँ। युधिष्ठिर ने कहा कि रूक जाओ। तो भीम ने सहदेव से कहा कि, सहदेव

थोड़ा अग्नि ले आओ, मै बड़े भैया के हाथ जलाना चाहता हूँ। अब इससे ज्यादा दु:खमय बात क्या हो सकती है। इससे ज्यादा मतभेद की सीमा क्या हो सकती है कि भीम ज्येष्ठ भ्राता के हाथ जलाना चाहता है। उन दिनों यदि हिन्दुस्तान टाइम्स या इंडियन एक्सप्रेस जैसे अखबार होते तो आपको समाचार मिलते कि 'There is fractionation among pandavas' यानि पाण्डवा म दो हिस्से हो गये। परन्तु पाण्डवों के सौभाग्य से उस समय अंग्रेजी प्रेस नहीं था। इतना मतभेद हुआ पांडवों में परंतु इसके कारण दो ध ाड़े हो गये हों ऐसा नहीं। उनकी एकता कायम थी, मतभेद था, मनभेद नहीं था।

वैसे देखा जाये तो खुद का खुद के साथ भी मतभेद होता है। हमारे एक राजनेता मित्र थे। उनको डायाबिटिज़ हो गयी, पर परहेज कभी नहीं करते थे। उनका मानना था कि यदि परहेज करना है और मीठा नहीं खाना तो जिंदा रहना ही क्यों ? पर जब डायबिटिज़ बढ़ गयी तो डॉ. ने कहा कि यदि मीठा खाना नहीं छोड़ा तो मर जाओगे। अब 'मर जााओगे' ऐसा कहा तो थोड़ा सोचने लगे। एक बार प्रवास में मैं उनके साथ था। उनके प्रवास के समाचार जगह–जगह मिलने के कारण स्टेशन–स्टेशन पर उनके शिष्य मिलने आ जाते। तो ये एक बार नीचे उतरे। शिष्यों ने माला पहनाई तो बोले, "हार लाये हो, उपहार नहीं लाये।" शिष्य बोले, "उपहार भी लाये हैं।" कहकर बर्फी का डिब्बा आगे कर दिखाया तो गुस्से से बोले, "डॉ. ने मुझे मीठा नहीं खाने को कहा है यह तुम नहीं जानते क्या मीठा खाऊंगा तो मर जाऊंगा ? तो क्या तुम मेरे दुश्मन हो ?" वह पुराना कार्यकर्ता था। नेताजी का स्वभाव जानता था। धीरे से बोला "नहीं जी ऐसा नहीं है। परन्तु यह बर्फी की नई वेराइटी है" नेताजी बोले, "ठीक है, नई वेराइटी है तो मैंने सोचा, एक बर्फी का टुकडा मुझे भी मिलेगा।" पर नहीं, पूरा डिब्बा वे खा गये। अब यह क्या है ? खुद का खुद के साथ मतभेद। याद आया कि डॉक्टर ने मना किया है तो कह दिया पर रहा नहीं गया तो पूरा खा गये, कि चार इंसुलिन के इंजेक्शन ज्यादा लगा लेंगे।

तो खुद का खुद के साथ भी मतभेद होता है। कहीं चार लोगों में मतभेद है तो एकदम यह कहना कि गडबड़ी हो गई, गुटबंदी हो गई, धड़ेबंदी हो गई, यह बराबर नहीं। पारिवारिक भाव यदि है तो परिवार में सबसे ज्यादा एकात्म्य किसका है, उसके आधार पर चलता है। संस्था में संवैधानिक चुनाव होते हैं– यह अध्यक्ष है, यह मंत्री है, यह उपाध्यक्ष है, आदि। परंतु परिवार में ऐसा नहीं होता। आपने अलग–अलग परिवार देखे हैं। सब परिवारों में मुखिया अलग–अलग रहते हैं। प्रमुखत्व एक ही स्थान पर नहीं रहता। किसी परिवार में पिता प्रमुख है, तो किसी में पिता के पिता, तो किसी में माता का प्रमुखत्व होता है। इसका कोई चुनाव नहीं होता। स्वाभाविक रूप से जो परिवार से ज्यादा एकात्म्य रखता है, वही उसका प्रमुख माना जाता है और उसकी जो मोरल ऑथोरिटी है, अधिकार है वह संवैधानिक नहीं है। वह मोरल ऑथोरिटी यानि नैतिक अधिकार है। संस्था में संवैधानिक अधिकार चलता है किंतु परिवार में मोरल ऑथोरिटी चलती है और जिस संस्था में मोरल ऑथोरिटी नहीं वह संस्था ठीक से काम नहीं कर सकती। तो मोरल ऑथोरिटी हमारे परिवार की विशेषता है। प्रत्येक संस्था में परिवार के समान मोरल ऑथोरिटी रखने वाले कुछ लोगों की आवश्यकता रहती है, यदि संस्था को ठीक ढंग से काम करना है तो केवल संविधान के आधार पर संस्था नहीं चल सकती।

जिस संस्था में मोरल ऑथोरिटी नहीं वह संस्था ठीक से काम नहीं कर सकती। तो मोरल ऑथोरिटी हमारे परिवार की विशेषता है। प्रत्येक संस्था में परिवार के समान मोरल ऑथोरिटी रखने वाले कुछ लोगों की आवश्यकता रहती है, यदि संस्था को ठीक ढंग से काम करना है तो केवल संविधान के आधार पर संस्था नहीं चल सकती।

एक बार हम कुछ राजनेताओं से बात कर रहे थे। वे हमारे मित्र थे। उनको भी यही बताया कि हरेक संस्था में मोरल ऑथोरिटी की आवश्यकता है। उन्होंने बताया कि राजनैतिक दल में ऐसा हो नहीं सकता। वहाँ तो सारा संवैधानिक रहता है। वहा मोरल ऑथोरिटी

जैसी कोई चीज़ हो नहीं सकती। मैंने कहा कि मैं आपको समझा तो नहीं सकता परंतु आपको एक घटना बताता हूँ :

मैं जनसंघ के प्रांरभ से ही जनसंघ में रहा हूँ। बाद में मजदूर संघ में आने के बाद जनसंघ को छोड़ा। तब मैं मध्यप्रदेश में कार्यरत था। संगठन मंत्री के नाते कुछ चुनाव आये। हमारे नवरगांव कॉन्स्टिट्युअन्सी में एक पुराने कार्यकर्ता थे। उनको टिकिट नहीं दिया और किसी दूसरे आदमी को टिकट मिला तो वे गुस्सा हो गये। वे नागपुर आ गये तब मैं कुछ बारह–चौदह लोगों को साथ ले कर बैठा था। उसमें पांच–छह पुराने कार्यकर्ता भी थे। उन्होंने पांच–छह शेड्युल कास्ट के लोगों से नये सिरे से सम्पर्क किया था और सोचा था कि यदि मैं उनके पास बैठुं तो उन पर प्रभाव अच्छा पड़ेगा। इस नाते उनको लाये थे। इधर यह कार्यकर्ता गुस्सा हो कर अंदर आ गया और अण्ट–शण्ट बकने लगा। अब अपने अपोइंटमेंट वगैरह तो रहता नहीं। हॉल में सीधा आ कर बैठ गया और बोलना शुरू कर दिया। उसने देखा भी नहीं कि ये सामने कौन बैठा है। "क्या है, पार्टी को कार्यकर्ता की कोई कदर नहीं है, मैं तो पार्टी के लिये बर्बाद हो गया हूँ।" आपने ऐसी भाषा अनेक बार सुनी होगी। अब मैं डर रहा था कि ये अनुसूचित जाति के लोगों पर प्रभाव डालने के लिये साथ लाये थे, अब ये क्या सोचेंगे। तो मैंने कहा, "तुम पण्डित जी के पास जाओ, मैं तो कुछ नहीं कर सकता।" तो वह पण्डित जी के पास गया। उस समय अजमेरी गेट पर पहली मंजिल पर बिल्कुल अंतिम दाहिने कमरे में जगदीश प्रसाद माथुर के साथ पण्डित जी रहते थे। वे सुबह ही पहुंच गये, नमस्ते किया और कहा कि मुझे आपसे कुछ बात करनी है। पण्डित जी ने

ऑल इण्डिया पोलिटिकल पार्टी के जनरल सेक्रेटरी दीनदयाल उपाध्याय क्या कर रहें हैं – साइक्लोस्टाईल की मशीन ठक–ठक कर रहे हैं, कई वेस्टपेपर बास्केट में जो पेपर पड़े हैं, उनमें कोई महत्व का कागज तो नहीं, स्वयं खोज रहे हैं। उनको लगा, क्या आदमी है ? इसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं कोई मान प्रतिष्ठा नहीं, डिग्निटी नहीं। निम्न स्तर का, बिलो डिग्निटी काम कर रहें हैं।

कहा, यदि नागपुर जाने की जल्दी है तो कहो, तुरंत बैठ जाते हैं, लेकिन मेरी एकाग्रता नहीं होगी क्योंकि दिन भर का काम बाकी है और यदि जल्दी नहीं है तो मेरा काम सवा छः बजे तक समाप्त होगा और उसके बाद सात बजे थालियाँ मंगवायेंगे और आराम से सुबह छः बजे तक तुम अपनी बात बताना। मैं आराम से सुन सकता हूँ। अब उसका काम ही क्या था–टिकट मांगना–तो रूक गया। लेकिन दिल्ली देखी नहीं थी तो कार्यालय में ही ठहरा और देखता रहा कि कार्यालय में क्या चलता है। पण्डित जी क्या कर रहे हैं यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ। ऑल इण्डिया पोलिटिकल पार्टी के जनरल सेक्रेटरी दीनदयाल उपाध्याय क्या कर रहें हैं– साइक्लोस्टाईल की मशीन ठक–ठक कर रहे हैं, कई वेस्टपेपर बास्केट में जो पेपर पड़े हैं, उनमें कोई महत्व का कागज तो नहीं, स्वयं खोज रहे हैं। उनको लगा, क्या आदमी है ? इसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं कोई मान प्रतिष्ठा नहीं, डिग्निटी नहीं। निम्न स्तर का, बिलो डिग्निटी काम कर रहें हैं। हल्के काम कर रहे हैं। साढ़े ग्यारह बजे जगदीश प्रसाद माथुर ने कहा कि तुम भोजन करके आ जाओ। मैं नीचे होटल में भोजन करके आया। पण्डित जी ने भोजन नहीं किया। डेढ़ बजे ब्रेड के दो पीस और दूध मंगवाया। तो उसको लगा कि जिस काम को मैं निम्न स्तर कह रहा हूँ, शायद पण्डित जी उसी को महत्व देते होंगे। पण्डिजी जब हाथ धोने बाहर गये तो वह टाईपिस्ट लड़के के सामने खड़ा हुआ और पूछा, "क्यों भाई, पण्डितजी कहाँ से चुनाव लड़ रहे हैं ?" लड़का कुछ नहीं बोला, देखता रहा। वह समझ गया कि क्या बेवकूफों जैसा प्रश्न कर रहा है। फिर से पूछा तो लड़का बोला, "पण्डितजी कहाँ चुनाव लड़ते हैं ?" इसने पूछा, "तो फिर काम किसका कर रहे हैं ?" उसने कहा, "वो तो तीन सौ लोगों को चुनाव लड़ा रहे हैं।" इतनी बात हुई कि पण्डित जी आ गये तो वह इधर उधर चला गया। दिमाग में चक्कर चला कि पण्डित जी खुद चुनाव नहीं लड़ रहे, बाकी के तीन सौ लोगों को चुनाव लड़ा रहे हैं और उनके लिये इतनी लगन से काम कर रहे हैं। दोपहर का खाना भी नहीं खाया। सवा छः बजे पण्डित जी का काम खत्म हुआ। सात बजे थालियाँ

मंगवाई। पण्डित जी ने कहा, "अब तुम आराम से अपनी बात बताओ।" उसने कहा, "कुछ नहीं पण्डित जी, मैं तो केवल आपके दर्शन करने आया था। चार–पांच महिने हो गये, आप हमारे इधर आये नहीं तो सोचा एक बार पण्डित जी के दर्शन कर लूं।" उन्होंने कहा, "नहीं नहीं कुछ बात तो है, तुम सुबह बोल रहे थे कि बात करनी है।" वह बोला, "कुछ नहीं, दर्शन के लिये ही आया हूँ।" फिर वह नागपुर आ गया। मुझसे मिला। मैंने कहा, "क्यों भाई ! मिल आये पण्डित जी से ? क्या फैंसला लेकर आये ?' तो वह हें हें करने लगा। फिर मैंने कहा, "पूरी बात बताओ, हें हें नहीं।" तो उसने पूरी बात बताई। मैंने उसको डांटा। कार्यकर्ताओं से प्रेम का सम्बंध होने के कारण हम उसे डांट भी सकते थे। हमने डांटा, बेटा तुमको शर्म नहीं आई। बाहर के छः सात लोग थे, तुमने देखा भी नहीं ओर एकदम बोलना शुरू कर दिया कि मैं पार्टी के लिये बर्बाद हो गया हूँ, पार्टी को कदर नहीं है ऐसा–ऐसा। तो उसने कहा, "गलती हो गई।" मैंने कहा, "तुमने यह बात पण्डित जी से क्यों नहीं कही ?" वह शेर–शायरी का जानकार था, जवाब दिया, 'क्या बताऊँ, उस महापुरूष को जब देखा, जो अपने लिये नहीं दूसरों के लिए जी जान से काम कर रहे थे तो मुझे एक शेर याद आ गया, "शिकवा क्या करता, उस महफिल में कुछ ऐसे भी थे जो उम्र भर अपने जख्मों पर नमक छिड़कते रहे।" वह बोला, "क्या बोलूं, मेरी ऊंगली कट गई है या उस्तरा लग गया, क्या शिकायत करता।" तो मैंने मेरे मित्र से कहा कि शायद मैं नहीं जानता, इसी को मोरल ऑथोरिटी कहते हैं, संवैधानिक नहीं, मोरल ऑथोरिटी होती है और यदि सबके सब लाईन में खड़े रहे तो संस्था में मोरल ऑथोरिटी किसकी रहेगी ?

तो मोरल ऑथोरिटी की यहाँ आवश्यकता है। मोरल ऑथोरिटी के नाते यह भी आवश्यक है कि संस्था के बारे में पूरी जानकारी हो और यह भी आवश्यक है कि विशुद्ध वैयक्तिक चरित्र हो। हमारे दूसरे एक राजनेता थे। हम पाँच–छः लोग बैठे थे तो हमने कहा कि किसी भी संस्था में मोरल ऑथोरिटी निर्माण होनी चाहिए और उसके लिए विशुद्ध चरित्र की आवश्यकता

है और किसी भी संस्था के बारे में नेता का चुनाव भी चरित्र देखकर करने की आवश्यकता है। वे भी हमको अव्यवहारिक ही समझते थे। उन्होंने कहा, "ठेंगड़ीजी आपकी बात जंचती नहीं। राजनैतिक दल में भी व्यक्तिगत चरित्र की आवश्यकता है ?" हमने कहा, "हाँ, जहाँ जहाँ भी व्यक्तियों का समूह है, वहाँ यदि मोरल ऑथोरिटी चलानी है तो व्यक्तिगत चरित्र कि आवश्यकता है।" वे बोले, "क्या अनाड़ी जैसे बात करते हो ? राजनैतिक दल में तो जिसमें राजनैतिक दक्षता है, उसको नेता बनाना चाहिए" और उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए तुरन्त हमारे प्रश्न का जवाब सभा में दिया। उन्होंने कहा, "कुछ लोग राजनीति नहीं जानते। वे किसको नेता बनाना, इसमें भी वैयक्तिक चरित्र की आवश्यकता है ऐसा कहते हैं, जो यहाँ अप्रासंगिक है।" उदाहरण दिया, "एक पटेल अपनी भैंस को बाजार में बेचने गया। लोगों के पूछने पर उसने भैंस की कीमत 55 हजार बताई। लोगों को आश्चर्य हुआ इतनी कीमत सुनकर। फिर भी पूछा, "दूध कितना देती है ?" तो पटेल बोला, "यह दूध तो देती ही नहीं है, गर्भवती होती ही नहीं। परंतु इसकी इतनी कीमत इसलिये है कि इसके जैसी विशुद्ध चरित्र वाली भैंस आपको कहीं नही मिलेगी।" अरे भाई, भैंस दूध के लिये खरीदी जाती है, विशुद्ध चारित्र्य के लिये नहीं। यह उसका क्राइटेरिया नहीं। तो राजनैतिक दल में राजनैतिक दक्षता कितनी है यह क्राइटेरिया होना चाहिए। यहाँ वैयक्तिक चारित्र्य की बातें फालतू हैं।" वो प्रगतिशील नेता थे। सुन लिया।

हम पाँच–छः लोग बैठे थे तो हमने कहा कि किसी भी संस्था में मोरल ऑथोरिटी निर्माण होनी चाहिए और उसके लिए विशुद्ध चरित्र की आवश्यकता है और किसी भी संस्था के बारे में नेता का चुनाव भी चरित्र देखकर करने की आवश्यकता है।

किंतु यह बात सही है कि हर संस्था में मोरल ऑथोरिटी की भी आवश्यकता है और मोरल ऑथोरिटी होने के लिये एक अपरिहार्य गुण यानि कि वैयक्तिक चरित्र अच्छा होना और दूसरा गुण कि संस्था में जो कार्य है उसकी सभी बारीकियों की वहाँ आवश्यकता होती है।

देखिये, संस्था को चलाना संविधान के आधार पर और अपने वनव.सी कल्याण आश्रम को चलाना है पारिवारिक भाव के आधार पर। दोनों में बहुत अंतर है। तो हमारा आधार संविधान नहीं। संविधान हमारा गुलाम है। सन् सैंतालिस के बाद लोग समझते हैं कि सब बातें संविधान के आधार पर और संविधान के कारण होती हैं। ऐसी बात नहीं है। हमारा मज़दूर संघ 1955 में स्थापित हुआ। उसका कोई संविधान नहीं था। ऑल इण्डिया बॉडी उसकी नहीं थी। बारह साल के बाद 1967 में दिल्ली के अधिवेशन में इस ऑल इण्डिया बॉडी का निर्माण हुआ। तब तक न कोई अध्यक्ष था न कोई महामंत्री। अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को देखिये। 1925 में संघ निर्माण हुआ और तेईस साल तक लिखित संविधान भी नहीं था। व्यवस्था तो थी। मजदूर संघ में भी व्यवस्था थी। जैसा मैंने कहा, परिवार में भी व्यवस्था होती है। ऑफिस जाने वाले ऑफिस जाते हैं, रसोई बनाने वाले रसोई घर में जाते हैं। यानि व्यवस्थाएं तो थीं। तो तेईस साल के बाद संघ का संविधान लिखा गया और वो भी जो व्यवस्थाएं पहले से थीं उन्हीं को लिपिबद्ध किया गया। कई लोगों को मालूम नहीं होगा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1885 में स्थापित हुई थी। बाईस साल तक उसके कोई नियम ही नहीं थे। संविधान की बात तो छोड़िये, 1908 में पहली बार थोड़े नियम बनाये गये कि सम्मेलन में कैसा व्यवहार करना। उसका पूरा संविधान तो 1920 में बना यानि 35 साल के बाद संविधान बना। तो संविधान को अधिक महत्व देने से संस्था का लाभ नहीं होता। संविधान हमारा आधार नहीं गुलाम है और पारिवारिक भाव यह हमारा आधार है। इस आधार पर हमें संस्था चलानी है।

संविधान को अधिक महत्व देने से संस्था का लाभ नहीं होता। संविधान हमारा आधार नहीं गुलाम है और पारिवारिक भाव यह हमारा आधार है। इस आधार पर हमें संस्था चलानी है।

वैसे हमारे सामने कितना काम है उसका विचार पिछले दिनों में हुआ। और भी आगे के दिनों में इस पर विचार होगा। तरह–तरह के

काम हमारे सामने हैं। शिक्षा क्षेत्र की आवश्यकता ध्यान में रख कर कोई स्कूल और प्रकल्प शुरू किया है, उसको चलाना है। भाव–जागरण के नाते विस्तृत सर्व व्यापक सम्पर्क करना है। जो शोषण होता है उसे रोकने के लिये संघर्ष करना है। तरह–तरह के काम हमारे पास हैं और उसके लिये मजबूत संगठन की आवश्यकता है। मजबूत संगठन यानि मजबूत पारिवारिक भाव–यह बात हम ध्यान में रखें।

अब संगठन मजबूत करने की दृष्टि से हमारे सामने आर.एस.एस. का आदर्श है। यह तो ठीक बात है कि संघ के सामने केवल संगठन, यही एक काम है और हमारे सामने दूसरे कुछ काम होने के कारण केवल संगठन का हम विचार नहीं कर सकते।

एक बार 1952 में पण्डित दीनदयाल जी मद्रास गये थे। रात के समय अनौपचारिक वार्ता चली। एक स्वयंसेवक खड़ा हुआ और पूछा, "पण्डित जी आप प्रचारक हैं ?" बोले, "हाँ।" तो पूछा, "जिन राज्यों में जनसंघ का काम चलता है वहाँ प्रचारक को ही यह काम दिया गया है ?" बोले, "हाँ।" तो उसने कहा, आप पक्षपात क्यों करते हैं ? संघ में भी प्रचारक है, जनसंघ में भी प्रचारक है तो जनसंघ में उसको संगठन मंत्री क्यों कहा जाता है ?" पण्डित जी ने कहा "उसका कारण ऐसा है :– संघ में प्रमुख काम संगठन का ही है। इसलिये प्रचारक पूरी ताकत संगठन में ही लगाता है। तो संगठन में पूरी ताकत लगाते समय थोड़ा पुनःस्मरण कराना कि जरा प्रचार की भी आवश्यकता है, इसलिये प्रचारक कहा गया। और राजनैतिक दल में केवल प्रचार ही प्रचार चलता है तो वहाँ भी कुछ पुनःस्मरण कराना कि नहीं, संगठन की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। इसलिये उसको संगठन मंत्री कहा।" ऐसा स्पष्टीकरण पण्डितजी ने दिया। अब वो गंभीरतापूर्वक दिया, गंभीरता से दिया या मजाक में दिया यह जानकारी नहीं परंतु ऐसा स्पष्टीकरण उन्होंने दिया था।

तो आपको जो सारे काम करने हैं उसका आधार संगठन है और संगठन मजबूत कैसे होता है, कैसे बिखर जाता है, इसके बारे में बारीकी से सोचने

की आवश्यकता है।

मैंने आपको परसों बताया था कि मैं इण्टक में था। उस समय के कांग्रेसी नेताओं के साथ बहुत अच्छा संबंध था, रविशंकर जी शुक्ल, द्वारिका प्रसाद जी मिश्र आदि। तो द्वारिका प्रसाद जी के यहाँ भी मैं ऐसे ही घर के बच्चे की तरह चला जाता था। उम्र तो छोटी थी ही। अपोइंटमेंट या एंगेजमेंट वगैरह की कोई बात नहीं होती थी एक दिन सुबह जब गया तो वे नहाकर अल्पाहार के लिये आये थे। वे सोचते थे, यह संघ का है, प्रचारक है इसके कारण मतभेद हुआ तब भी विश्वासघात नहीं करेगा। इसलिये अपने मन की बात बोल देते थे, हमारे सामने तो उन्होंने एक बात कही। बोले, "तुम्हारे संघ पर एक साल के लिये पाबंदी थी। अब साल समाप्त होने आया तो पण्डित जवाहर लाल नेहरू के सामने सवाल आया कि साल की समाप्ति के बाद संघ पर से पाबंदी हट जायेगी, उसके बाद फिर से इनकी शाखाएं शुरू हो जायेगी। नॉटिफिकेशन द्वारा फिर से पाबंदी लगानी चाहिए इसका विचार करने के लिए सभी राज्यों के गृहमंत्रियों को अपने पास बुलाया तो मैं भी गया। जानबूझ कर पण्डितजी को चिढ़ाने के लिये कहा, "पण्डितजी आप क्यों पूछ रहे हो ? आप ता आर.एस.एस. को बढ़ावा देना चाहते हो।" उन्होंने कहा, 'मैं ता आर.एस.एस. को खत्म करना चाहता हूँ। मैं कहाँ बढ़ावा दे रहा हूँ ?" मैंनें कहा, "आपने यही तो किया है। हजारों लोगों को जेल में डाला वो सब संघ के थे क्या ? फिर इन हजारों लोगों के कितने रिश्तेदार, कितने मित्र होंगे– उन सबको आपने अपना शत्रु बनाया और जो संघ के नज़दीक नहीं थे उनको भी संघ की गोद में धकेल दिया।" ऐसे वो बोल रहे थे, इतने में कोई आ गया तो बात वहीं रूक गई।

चूंकि हमारी उम्र छोटी थी, एकदम बोलना भी ठीक नहीं तो कुछ बोला नहीं। लेकिन मन में प्रश्न आया कि संघ को खत्म करने के लिये जवाहर लाल जी ने जो किया उसके अलावा और कर भी क्या सकते थे ? जिस संस्था को खत्म करना चाहते हैं उसको दबाने के लिये, कुचलने के लिये दूसरा क्या रास्ता हो सकता है? उनके लोगों को जेल में डालना, दण्ड देना,

टॉरचर करना वगैरह। ऐसा विचार तो आया परंतु मौका देखकर बोलना था। ऐसा अवसर चार–पांच दिन बाद आया तो मैंने पण्डितजी को कहा कि नेहरूजी के पास इसके अलावा रास्ता ही क्या था? वे हंसने लगे और कहा, "यह तो बड़ा द्राविडि प्राणायाम है।" (यानि उलटे हाथ से कान पकड़ना) तो मैंने पूछा, "फिर सीधा प्राणायाम कौन सा होता है ?" वे बोले, "जिस संस्था को आप खत्म करना चाहते हो, मनोविज्ञान के आधार पर आप यह रास्ता लीजिये। कम्फर्ट लिविंग केडर्स एण्ड स्टेटस कॉन्शियस लीडर्स (Comfort loving cadres and status conscious leaders). इन दोनों का निर्माण कर लीजिये। कम्फर्ट लिविंग केडर्स यानि सुख–सुविधा, सुखासीन, सुखासक्त, आराम परस्त कार्यकर्ता बनाइये और स्टेटस कॉन्शियस लीडर्स यानि उनके नेताओं को प्रतिष्ठा के प्रति भाव निर्माण करने वाला बना दीजिये। अब उस समय तो इतनी बात समझ में आयी नहीं, इसका अर्थ समझने की बुद्धि उस समय थी नहीं।

मैं बात भूल भी गया। लेकिन अचानक 1976 में इस बात पर प्रकाश डालने वाला सम्भाषण हुआ, आचार्य दादा धर्माधिकरे के पास में कुछ चर्चा चल रही थी। उन्होंने कहा, "हमारे हाथ से, हमारे लोगों ने बड़ी गलती की। आचार्य विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, मैं हम तीनों से यह गलती हुई। मतलब ऐसा था कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद, जैसा कि मैंने परसों बताया, गांधीजी के दो प्रवाह थे–एक राजनीति और दूसरा रचनात्मक (सर्वोदय वाले), तो कांग्रेंस ने सोचा कि सर्वोदय वाले अपने गुरू भाई हैं, इनकी सहायता करना अच्छा है। ज्यादा सुविधाएं, जमीन, भवन, पैसा, वाहन, मोटर कार वगैरह प्रवास की सुविधाएँ आदि देने से अच्छा होगा। अब हमने मांगा तो नहीं था, परंतु यदि सरकार दे रही है तो लेने में क्या आपत्ति है ? सुविध ाओं के अभाव में काम में विलम्ब ता होता ही है। अब ये सुविधाएँ मिलेगी तो कार्य बढ़ेगा ही, इस भावना से हमने स्वीकार किया। किन्तु थोड़े दिन बाद ऐसा दिखाई दिया कि ज्यादा सुविधाएँ आने के कारण काम कितना बढ़ा–यह तो कहा नहीं जा सकता लेकिन हमारे कर्मठ कार्यकर्ताओं की

मनोवृत्ति मं परिवर्तन हो गया। जैसे चार किलोमीटर पर सभा है। जाने के लिये वाहन नहीं है तो पहले हमारे कार्यकर्ता पैदल चले जाते थे। परंतु अब एक किलोमीटर पर भी यदि मोटर नहीं है तो नहीं जायेंगे। सुख – सुविधाओं की आदत हो गई और उसके कारण कर्मठ कार्यकर्ताओं की गुणवत्ता कम हो गई, कर्मठता कम हो गई, मेहनत करने की प्रवृत्ति कम हो गई। आराम परस्त हो गये। इसके कारण सर्वोदय नीचे जा रहा है।" ऐसा उन्होंने हमसे कहा तो मुझे स्मरण हुआ कि 1949 में ये बात द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र ने कही थी। उसका नगूना हम यहा देख रहे हैं। तो उन्होंने कहा कि किसी भी संस्था के विघटन के लिये दो बातें बहुत हैं : कम्फर्ट लिविंग केडर्स एण्ड स्टेटस कॉन्शियस लीडर्स। अब यह स्टेटस कॉन्शियस लीडर्स का मतलब भी मैं नहीं समझता था। वो भी बहुत सालों बाद हमारे दिमाग में आया। जब बाबा साहेब अंबेड़कर का धर्मान्तरण हुआ, धर्मांतरण के पिछले दिन, दिनभर बाबा साहब अम्बेडकर श्याम होटल, नागपुर में अपने अनुयायियों के साथ थे। उनका विचार था कि अनुयायियों के साथ पूरी बात की जाये। अपने मन के सारे विचार उनको बताये जायें। इस दृष्टि से उन्होंने किसी प्रेस वाले, पेपर वाले किसी को कुछ नहीं बताया। दिनभर बातें करते रहे। उनसे एक बूढ़े आदमी ने प्रश्न किया, "बाबा, मैंने अपने जीवन में कई संस्थाओं को ऊपर आते देखा है, आपने जो कहा कि भगवान बुद्ध ने कहा कि जहाँ उपेक्षा है वहाँ काम बढ़ेगा और जहाँ उपेक्षा नहीं है वहाँ काम घटेगा। हमको लगता है कि यह आपका स्लिप ऑफ टंग (slip of tongue) है। उपेक्षा से काम कैसे बढ़ सकता है ?' बाबा साहब ने कहा कि नहीं, यह

जब यशोमंदिर का शिखर दिखने लगता है तो कार्यकर्ताओं के दिमाग में परिवर्तन होता है। मनोवृत्ति बदलती है। शुरू से अब तक ध्येयनिष्ठा के लिये कर्मठता से काम करते आये हैं। अपना स्वयं का विचार न करते हुए काम करते आये हैं। लेकिन जब यश का शिखर दिखने लगता है, कई लोग दौड़ने लगते हैं।

स्लिप ऑफ टंग नहीं है। भगवान बुद्ध ने कहा कि जहाँ उपेक्षा है वहाँ काम बढ़ेगा और जहाँ उपेक्षा नहीं वहाँ काम घटेगा। यहाँ बड़े टेक्नीकल (technical) अर्थ में उपेक्षा शब्द का प्रयोग किया था, कोई साधारण अर्थ में नहीं कहा है, मामूली जो उपेक्षा होती है उस अर्थ में नहीं।

कोई भी काम या संस्था का निर्माण होता है, तो कोई उसकी तरफ देखता ही नहीं। सब लोग उदासीन रहते हैं। थोड़े लोग संस्था का काम करते हैं। लेकिन बहुत दिन काम करने के बाद भी जब जनता उदासीन है तो कुछ लोग हतोत्साहित हो जाते हैं और काम छोड़ देते हैं। बाकी थोड़े लोग काम जारी रखते हैं इसके कारण काम थोड़ा आगे बढ़ता है। जब काम बढ़ता है तो कुछ लोग दखल देने लगते हैं, उपहास करते हैं, मजाक करते हैं। अब जब काम करने वाले देखते हैं कि हमारा मजाक, उपहास हो रहा है तो कुछ लोग नर्वस (nervous) हो जाते हैं, निराश हो जाते हैं, घर बैठ जाते हैं। फिर भी थोड़े लोग काम जारी रखते हैं, और काम आगे बढ़ता है। काम जब ज्यादा बढ़ता है तो उसका विरोध होना भी शुरू हो जाता है। अब जिन्होंने लगातार काम किया वे विरोध को मानते ही नहीं और जोर से काम बढ़ाते हैं, विरोध का सामना करते हैं। और ऐसा होते होते जब विरोध को तोड़ कर आगे बढ़ते हैं तो फिर यश का शिखर दिखने लगता है। जब यशोमंदिर का शिखर दिखने लगता है तो कार्यकर्ताओं के दिमाग में परिवर्तन होता है। मनोवृत्ति बदलती है। शुरू से अब तक ध्येयनिष्ठा के लिये कर्मठता से काम करते आये हैं। अपना स्वयं का विचार न करते हुए काम करते आये हैं। लेकिन जब यश का शिखर दिखने लगता है, कई लोग दौड़ने लगते हैं। उन्होंने (बाबा साहब ने) शब्द प्रयोग किया, क्रायसिस ऑफ क्रेडिट शेयरिंग (crisis of credit sharing) यानि यहाँ तक जो प्रगति हुई है इसमें मेरे काम का हिस्सा कितना है, मैंने क्या किया है, मेरा कितना हिस्सा है यह दिखाने की प्रवृत्ति उस समय निर्माण होती है। अभी तक यह प्रवृत्ति नहीं थी परंतु यश का शिखर दिखते ही मनोवृत्ति में बदलाव आ जाता है और लोगों में उस यश का श्रेय लेने की होड़ लग जाती है। उस समय जो

संस्था के प्रवर्तक लोग हैं, संचालक लोग हैं यदि वे लोग क्रेडिट शेयरिंग के प्रति उपेक्षावृत्ति धारण करते हैं कि जाने दीजिये, उनको दौड़ने दीजिये, हम तो घर बैठे हैं, हमको क्रेडिट शेयरिंग करना नहीं हैं, मैंने कितना काम किया यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है–ऐसा उपेक्षा भाव जब प्रमुख प्रवर्तक लोग, संचालक लोग धारण करते हैं तब संस्था आगे बढ़ती है और जब ये लोग भी उस क्रेडिट शेयरिंग की होड़ में लग जाते हैं तब संस्था का काम घटता है। ऐसा भगवान बुद्ध ने बताया।

उस समय मुझे स्मरण हुआ कि 1947 में मिश्रजी ने जो कहा था (द्वारिका प्रसादजी ने)– स्टेटस कॉन्शियस लीडर्स के बारे में उसका मतलब क्या होता है। जब प्रतिष्ठा की भूख नेताओं में निर्माण होती है तब संस्था का काम घटता है। आज तो यह महान् संकट है हमारे सामने, देश के सामने, वायुमण्डल ऐसा है। सैंतालीस के पहले ऐसा नहीं था। सामन्तवादी प्रवृत्ति है। नेताओं के पीछे, मंत्रियो के पीछे चक्कर काटना, गणेश प्रदक्षिणा करना, चापलूसी करना, यह सब चलता है। जानते हुए भी कि यह झूठ बोल रहा है कि वाह! आपके जैसा कोई नेता नहीं उसकी बात जच जाती है। किसी को भी कहा कि प्रेसीडेंट तो आपको बनना चाहिये, तुम्हारी योग्यता, तुम्हारा त्याग, ज्यादा है आदि आदि तो उसको बात जंचने में समय नहीं लगता और नेता लोग भी इसको प्रोत्साहन देने वाले होते हैं। सारा वायुमण्डल स्टेटस कॉन्शियस का हो जाता है।

उस समय जो संस्था के प्रवर्तक लोग हैं, संचालक लोग हैं यदि वे लोग क्रेडिट शेयरिंग के प्रति उपेक्षावृत्ति धारण करते हैं कि जाने दीजिये, उनको दौड़ने दीजिये, हम तो घर बैठे हैं, हमको क्रेडिट शेयरिंग करना नहीं हैं, मैंने कितना काम किया यह दिखाने की आवश्यकता नहीं है–ऐसा उपेक्षा भाव जब प्रमुख प्रवर्तक लोग, संचालक लोग धारण करते हैं तब संस्था आगे बढ़ती है और जब ये लोग भी उस क्रेडिट शेयरिंग की होड़ में लग जाते हैं तब संस्था का काम घटता है। ऐसा भगवान बुद्ध ने बताया।

उदाहरण के लिये देखिये कि मैं यहाँ

भाषण दे रहा हूँ। यहाँ से कोई आदमी दिल्ली हमारे घर आता है और कहता है, "ठेंगड़ी जी, आपका उस दिन जो भाषण हुआ, सब लोग कहते थे कि ऐसा भाषण उन्होंने जीवन में कभी सुना नहीं," ठेंगड़ीजी खुश। ठेंगड़ीजी सोचते हैं कि यह मेरा सच्चा कद्रदान है, योग्यता पहचानने वाला है। अब जब वो देखता है कि ठेंगड़ीजी खुश हो गये किसी बड़ी योजना पूर्वक नहीं लेकिन और थोड़ा हमारे हृदय के नज़दीक आने के उद्देश्य से वाक्य बोल देता है, "ठेंगड़ीजी और सब लोग तो बड़े खुश थे लेकिन क्या बात हुई, पता नहीं, वो जो अपने सप्रेजी है न ?" ठेंगड़ीजी चौकन्ने, "भाई सप्रेजी को क्या हुआ ?" वह बोलते–बोलते रूक जाता है। मेरी उत्सुकता को और बढ़ा देता है। मैं फिर से पूछता हूँ, "अरे भाई, सप्रेजी ने क्या कहा ?" वह बोलता है, "छोड़िये–छोड़िये, कोयला कितना भी घिसो, वह काला ही रहेगा।" अब मेरे मन में सप्रेजी के बारे में अकारण दुश्मनी का भाव पैदा होता है। अब यह आज का वायुमण्डल है, स्टेटस कॉन्शियसनेस। तो ये दो बातें किसी भी संगठन के विघटन के लिये काफी है–कम्फर्ट लिविंग केडर्स एण्ड स्टेटस कॉन्शियस लीडर्स सुविधाभोगी, सुखासक्त, सुखासीन ऐसे कार्यकर्ता और प्रतिष्ठा का भाव जिनके मन में जागृत है ऐसे नेता। ये दो बातें मिश्रजी ने कही थीं। और ये बातें स्वाभाविक रूप से हो जाती हैं। उसके लिये तकलीफ नहीं उठानी पड़ती। मनोविज्ञान के अनुकूल हैं ये बातें और यदि ऐसा होता है तो किसी भी संगठन का खात्मा हो जाता है,ऐसा उन्होंने कहा। ❑

४

आज भारत में कितनी समस्याएं हैं, हम जानते हैं। सभी क्षेत्रों में–आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं से हम ग्रस्त हैं। इस पृष्ठभूमि पर जब मैंने एक श्रेष्ठ इतिहासकार अर्नोल्ड टायान्वी (Arnold Toyanvi) का भारत के विषय में अभिप्राय पढ़ा तो आश्चर्य हुआ। उन्होंने ऐसा लिखा कि आने वाले भविष्यकाल में दुनिया को मार्गदर्शन करने का दायित्व भारत पर आयेगा। आश्चर्य हुआ। हमें लगा कि इनको पता ही नहीं है कि आज हमारी कैसी खस्ता हालत है। हमारी धोती छूट रही है, बाकी चार लोगों की भी छूट रही है। अर्नोल्ड टायान्वी कहते हैं कि अपने साथ बाकी चार लोगों की धोती संवारने का दायित्व तुम्हारे ऊपर ही आने वाला है। मैं आगे पढ़ने लगा। वे आगे लिखते हैं कि भारत आज नाना प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है। यहाँ तक कहा कि पूरी दुनिया में जितने प्रकार की समस्याएँ हैं, सब प्रकार की समस्याएँ आज भारत के सामने है। किन्तु भारत के अन्दर एक सांस्कृतिक, पारंपारिक क्षमता है, वो दुनिया के किसी देश के अन्दर नहीं है। इसके कारण मार्गदर्शन का दायित्व भारत के ऊपर आयेगा। तो वह क्षमता क्या है ?–विभेदों को विविधता के रूप में देखना और विविधता में एकात्मकता का साक्षात्कार करना, ऐसा उन्होंने कहा था।

किन्तु भारत के अन्दर एक सांस्कृतिक, पारंपारिक क्षमता है, वो दुनिया के किसी देश के अन्दर नहीं है। इसके कारण मार्गदर्शन का दायित्व भारत के ऊपर आयेगा। तो वह क्षमता क्या है ?–विभेदों को विविधता के रूप में देखना और विविधता में एकात्मकता का साक्षात्कार करना।

अब इस श्रेष्ठ इतिहासकार ने अठ्ठाईस सिविलाइज़ेशन एण्ड सब–सिविलाइज़ेशन का

अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला। अब हम सोचें कि क्या हमारी ताकत हैं यह सब करने की ? आज तो हम मार खा रहे हैं। विविध मोर्चों पर पिछड़ रहे हैं। तो हमारी शक्ति क्या है ? एक जगह हमने प्रश्न किया एक बैठक में, "बताओ, संघ की कुल मिला कर शक्ति कितनी ?" तो तीन–चार किशोर स्वयंसेवकों ने हाथ ऊपर किया। बोले, "संघ के जितने स्वयंसेवक हैं उन सबकी सम्मिलित शक्ति का जोड़ यानि संघ की शक्ति।" किन्तु फिर मन में प्रश्न आया कि यह अगर मान भी लिया जाये तो भी हरेक की शक्ति कितनी है इसकी कुछ जानकारी है क्या ? आपको लगेगा कि इसमें क्या है? एक–एक आदमी की शक्ति कितनी है, हम जानते हैं। मुझे लगता है, हम नहीं जानते। कोई भी आदमी हमेशा शक्ति के एक स्तर पर नहीं रहता। अलग–अलग समय शक्ति का स्तर अलग–अलग रहता है।

महाराष्ट्र में एक घटना प्रसिद्ध है। दक्खन के सेनापति बापू गोखले एक बार घर में नाई से दाढ़ी बनवा रहे थे। दाढ़ी बनाते–बनाते थोड़ा सा उस्तरा लग गया तो मुंह से हिस्स–स–स करके शब्द निकल गया। आप जानते हैं नेता ओर नाई आवश्यकता से अधिक बोलने के लिये प्रसिद्ध है। तो नाई बोला, बापू, बड़ा आश्चर्य है, जरा सा उस्तरा लग गया तो उफ करने लगे। हम तो सुनते थे रण–मैदान में आप बड़ी हिम्मत के साथ लड़ते हैं। हाथ–पैर कट गया तो भी आप लड़ते रहते हैं। बापू ने कोई जवाब नहीं दिया। दाढ़ी करना समाप्त हुआ। नाई पैसे ले कर जाने लगा तो उससे बोले, "तुम जरा रूको। तुम्हारा बायां पैर सामने लाओ।" उसके बायें पैर के अंगूठे पर अपने दायें पैर का अंगूठा रखा और पास में रखे भाले को जोर से भोंक दिया। भाला बापू के अंगूठे को चीरता हुआ नाई का अंगूठा चीर कर जमीन में गड़ गया। नाई

अरे, रण मैदान में भावना (spirit) अलग होती है और यहाँ का माहौल अलग होता है। तूने यह अंदाजा कैसे लगा लिया कि जो शौर्य जो शक्ति रण मैदान में होगी वो दाढ़ी बनाते समय भी होनी चाहिए। यहाँ की स्पीरिट अलग है, वहाँ की स्पीरिट अलग होती है।

चिल्लाने लगा, बापू यह सजा क्यों दे रहे हो? बापू हंसते हुए बोले, मैं सजा नहीं दे रहा हूँ, तेरे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूँ। तूने पूछा था कि रण मैदान में तो तुम इतना शौर्य दिखाते थे और यहाँ थोड़ा सा उस्तरा लग गया तो हिस्स–स क्यों किया ? अरे, रण मैदान में भावना (spirit) अलग होती है और यहाँ का माहौल अलग होता है। तूने यह अंदाजा कैसे लगा लिया कि जो शौर्य जो शक्ति रण मैदान में होगी वो दाढ़ी बनाते समय भी होनी चाहिए। यहाँ की स्पीरिट अलग है, वहाँ की स्पीरिट अलग होती है। मेरे एक चचेरे भाई ने प्रेम विवाह किया। वह महिला श्रीमंत परिवार की थी। घर का काम करने की आदत नहीं थी। हमारा तो लोअर मिडील क्लास का घर था। सारा काम करना पड़ता था। वह इतनी नाजुक थी कि जब वो रोटी उलट–पलट करती तब भी सू–सू करती थी। हम सब उसकी मज़ाक उड़ाते थे। परंतु उसको इतनी सी भी गर्मी बर्दाशत नहीं होती थी। एक दिन हमारे घर में आग लग गई। मध्य रात्रि में बाहर के लोगों ने जब देखा तो अंगार–अंगार करते दौड़ के आये तो घर के लोग भी जाग गये। हमारा संयुक्त परिवार था। वह एकदम अंदर के कमरे में सोयी थी–एक के बाद एक ऐसा तीसरा कमरा। वह खटिया पर सोयी थी और पास में झोली में उसका नया पैदा हुआ बच्चा सोया था। जब अंगार–अंगार चिल्लाहट सुनी तो नींद से हड़बड़ाहट में उठी और घबरा कर बाहर आ गयी। बाहर आयी, देखा आग लगी है तो स्मरण हुआ कि उसका बच्चा तो अन्दर है। आश्चर्य हुआ कि वह जलते हुए मकान में एक कमरा लांघ कर, दूसरा कमरा लांघ कर तीसरे कमरे में पहुँची, झोली से बच्चे को उठाया और सीने से लगा कर बाहर ला रही थी कि उसकी साड़ी जल गई और वह बेहोश हो कर गिर पड़ी। बाद में उसको उठाया, संभाला। सबको आश्चर्य हुआ कि जो रोटी सेकते हुए सू–सू करती थी, उसको जलते हुए मकान में अन्दर जाने का साहस किसने दिया ? तब पता चला कि शक्ति का स्तर हर समय एक–सा नहीं रहता। जो एकदम दुबली पतली कोमल स्त्री थी उसने महान शक्ति का प्रदर्शन किया।

इससे बिल्कुल उल्टा एक उदाहरण हमारे एक प्रचारक ने हमको बताया। दिल्ली में झण्डेवाला पर हरीश जी नाम के एक प्रचारक पाकिस्तान के थे। लाहौर के पास उनका गाव था। उस गाव के नवाब साहब का छोटा सा राज्य था। अब पुराने राजाओं, जागीरदारों, नवाबों को एक शौक होता था कि अपने दरबार में अच्छा कलाकार, कोई संगीतकार, कोई चित्रकार रखते थे। अब ये जो नवाब साहब थे उन्होंने अपने दरबार में सबसे अच्छा पहलवान रखा और घोषणा करवा दी कि जो मेरे पहलवान से कुश्ती लड़ेगा और उसको हरायेगा तो इतने–इतने हजार रूपये उसको दूंगा तथा इस पहलवान की भी छुट्टी कर दूंगा। यदि वह हार गया तो चार–पांच महिने उसको जेल में बंद कर दिया जायेगा। यदि वह ऐसा नहीं कहते तो कोई भी मजाक या शौकिया कुश्ती खेलने के लिये आ जाता। तो उन्होंने चार महिने की सजा हारने वाले के लिये रखी। चार–पांच पहलवान आये लड़ने। परंतु सब हार गये और जेल में ध ाकेल दिये गये। कुछ समय बाद एक बाप अपने उन्नीस–बीस वर्ष के बेटे के साथ उस गाव में आया और एक धर्मशाला में ठहरा। लड़का उसका एकदम दुबला–पतला, लकड़ी पहलवान। कुश्ती का तो कभी काम नहीं, व्यायाम भी कभी किया नहीं। ऐसे बेटे को लेकर आया। उसे धर्मशाला में रखकर वह बुड्ढा नवाब साहब के पास गया और कहा, मैं अपने बेटे की ओर से आपका आह्वान स्वीकारता हू। नवाब साहब ने कहा कि जरा सोच–समझ कर बोलना, पहले ही पांच पहलवान जेल में पहुंच गये हैं। बुड्ढे ने कहा कि वो सोच–समझ कर ही बोल रहा है। बात हुई कि तारीख नक्की कर दी

अब पुराने राजाओं, जागीरदारों, नवाबों को एक शौक होता था कि अपने दरबार में अच्छा कलाकार, कोई संगीतकार, कोई चित्रकार रखते थे। अब ये जो नवाब साहब थे उन्होंने अपने दरबार में सबसे अच्छा पहलवान रखा और घोषणा करवा दी कि जो मेरे पहलवान से कुश्ती लड़ेगा और उसको हरायेगा तो इतने–इतने हजार रूपये उसको दूंगा तथा इस पहलवान की भी छुट्टी कर दूंगा।

जाये। बुढ्ढे ने कहा, "नहीं आपको इन्साफ करना चाहिये और इन्साफ का तकाजा है कि आप अपने पहलवान को बदाम–पिश्ता–हलवा खिलाते हैं, इसके कारण यह तगड़ा–मोटा है। हम गरीब कहा से खिलाएं। तो मेरे बेटे को छः महिने ये सब सूखा–मेवा आदि खिलाने की व्यवस्था हो और फिर कुश्ती हो। नवाब साहब ने कहा, "ठीक है" और छः महिने का पैसा दे दिया। बुढ्ढा धर्मशाला में आया और बाप–बेटे आराम से रहने लगे। मेहनत कुछ करनी नहीं थी अखाड़ा कभी खेलना नहीं था, व्यायाम कभी किया नहीं। खाये–पिये मस्त।

पांच महिने बाद नवाब के पहलवान को लगा, वैसे तो कोई मुझे हरा नहीं सकता तो भी बोलते हैं न कि टूर ऑन सेफर साइड (tour on safer side), तो आदमी को धर्मशाला में पता करने भेजा कि जरा पता लगाओ, जिसके साथ कुश्ती लड़नी है, वह कितना बलशाली है। तो आदमी आया। उस बूढ़े से दोस्ती की और धीरे–धीरे अंदर गया और देखा तो आश्चर्य हुआ कि यह दुबला–पतला लड़का कैसे हमारे पहलवानजी से मुकाबला करेगा। तो लड़के के बाप ने कहा, मैं जानता हू कि इस लड़के का पहलवानजी से कोई मुकाबला नहीं परंतु मैं शर्तिया बताता हूँ कि जीत मेरे बेटे की ही होगी। आदमी ने आकर पहलवान जी को सारी बात बतायी। पहलवान ने आदमी को वापस भेजा कि पता लगाओ, लड़के के पिताजी ने इतने विश्वास से यह कैसे कह दिया कि जीत उसके बेटे की ही होगी। कुछ तो इसमें राज हैं। आदमी वापस आया। बाप ने कहा, "देखो मैं एक गुप्त बात बताता हू कि इसका रहस्य क्या है ?" यह दुनिया का चलन है कि यदि आप कह दो किसी को कि यह बात किसी को बताना नहीं, गुप्त रखना तो वह पूरी दुनिया में फैल जाती है। यदि आपको किसी बात को दुनिया में फैलाना है तो कह दीजिये, "देखो यह गुप्त बात है, तुम किसी को बताना मत।" आपका काम हो जायेगा। बाप ने कहा, इस लड़के की क्या ताकत है यह तो मैं जानता हू, परंतु मुझे साधना करने के कारण सिद्धि प्राप्त है कि मेरे लड़के को कोई हाथ लगायेगा तो सिद्धि के कारण वह नीचे गिर जायेगा, बेहोश

हो जायेगा और जिन्दा रहेगा कि नहीं, यह मैं कह नहीं सकता।

अब यह खबर पहलवान को मिल गई। कुश्ती का दिन आया। आजु–बाजु के गाँवों से कुश्ती देखने चार–पांच हजार लोग इकठ्ठा हुए। नवाब साहब की कुर्सी भी एक तरफ लगा दी गई। अब समय हो गया किन्तु नवाब साहब का पहलवान आया नहीं। इधर ठीक समय पर वह लकड़ी पहलवान बड़े रौब से दूसरे कोने से आ रहा था। लोग हंसने लगे, "अरे यह लकड़ी पहलवान कुश्ती करेगा पहलवान से !" पहलवान को बुलाने भेजा, पर वह आया नहीं। नवाब साहब ने कहा, उसको घसीट कर लाओ। उसको घसीट कर लाये। अब जैसे–तैसे यह पहलवान मैदान में उतरा। इधर से यह पहलवान और उधर लकड़ी पहलवान आमने–सामने आ रहे थे। जब कुश्ती से पहले हाथ मिलाने की बात आयी तो नवाब का पहलवान पीछे–पीछे भागने लगा। इधर यह लकड़ी पहलवान आगे बढ़ता गया, वह पीछे भागता गया। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ यह दृश्य देखकर। अब यह पहलवान जी क्या बतायेंगे ? पहलवान सबसे शक्तिमान माना जाता है। और इतनी शक्ति है भी पहलवान में। किन्तु डर के मारे पीछे भाग रहा है। तो क्या कारण है? शक्ति के स्तर का अन्दाज करना बहुत कठिन है। यह केवल शारीरिक शक्ति की ही नहीं, मानसिक शक्ति की भी बात होती है। और इसके कारण राष्ट्र की बात हो, व्यक्ति की बात हो, केवल उसका शरीर देख कर अन्दाज लगाना गलत है। उनकी मानसिकता क्या है यह समझने की आवश्यकता होती है। केवल मानसिकता के कारण लड़ाई में कभी जीत तो कभी हार होती है।

इसके कारण राष्ट्र की बात हो, व्यक्ति की बात हो, केवल उसका शरीर देखकर अन्दाज लगाना गलत है। उनकी मानसिकता क्या है यह समझने की आवश्यकता होती है। केवल मानसिकता के कारण लड़ाई में कभी जीत तो कभी हार होती है।

ट्राफेलगल (Traufelgul) की लड़ाई में अंग्रेजों के नाविक दल के जहाजी बेड़े और शत्रु के जहाजी बेड़े–इनमें युद्ध चल

रहा था। गोलाबारी करते करते अंग्रेज एड़मिरल (नाविक दल का सेनापति) ने देखा कि अपना गोला–बारूद खत्म हो रहा है। अब यदि फायरिंग जारी रखेंगे तो अपने दल को मरवाना होगा। इससे अच्छा है कि हम आत्म समर्पण कर दें, अपने लोगों की जान तो बच जायेगी। ऐसा सोच कर उसने ऊपर के केबिन से इशारा किया कि आत्म समर्पण का सफेद झण्डा आगे के जहाज में लहराना चाहिए। सबके आगे जो जहाज था उसके केप्टन का नाम था नेल्सन। नेल्सन को किसी ने बताया कि एडमिरल की ओर से इशारा आ रहा है कि आत्म समर्पण का सफेद झण्डा खड़ा करो। नेल्सन लड़ने के पक्ष में था। वह आत्म समर्पण नहीं करना चाहता था। लेकिन इंग्लिश नेवी का होने के कारण अनुशासन भंग करना भी उसके रक्त में नहीं था। अब अनुशासन भी भंग नहीं किया जाये और फायरिंग तो अपने जहाज से जारी रखना चाह ही रहा था। नेल्सन की एक आँख फूटी थी। उसने अपनी फूटी आँख को एडमिरल के केबिन की तरफ कर दिया। अब आँख फूटी होने के कारण एडमिरल का इशारा भी देख नहीं सकता था। कुछ नहीं दिखने के कारण अनुशासन तोड़ने का तो सवाल ही नहीं। अब एडमिरल के संकेत करने के बाद भी उसने पाँच–छः मिनिट फायरिंग जारी रखी। ब्रिटीश एडमिरल को यह पता नहीं था कि उधर के एडमिरल के सामने भी यही समस्या आ रही थी। उधर का एडमिरल भी सोच रहा था कि क्यों फायरिंग जारी रख कर अपने आदमियों को मरवाया जाये। अब इधर के एडमिरल की आज्ञा होते हुए भी नेल्सन ने झण्डा खड़ा नहीं किया। तीन–चार मिनिट के बाद ही सामने की सेना के एडमिरल ने सफेद झण्डा खड़ा कर दिया। अब क्या दोनों की शक्ति समान नहीं थी ? पर मानसिकता का सवाल है। ब्रिटिश एडमिरल का मन अलग था, नेल्सन का मन अलग तरह का था। वैसे ही सामने वाले एडमिरल का मन अलग तरह का था। यदि नेल्सन ने आज्ञा का पालन किया होता तो इंग्लैण्ड की पराजय होती । युद्ध में नेल्सन की मृत्यु हुई। जैसे अपने यहाँ कहा गया 'गढ़ आला पण सिंह गेला'। परंतु नेल्सन की मानसिकता के कारण ट्रॉफेलगल के युद्ध में

अंग्रेजों की विजय हुई।

अब मानसिकता यह बहुत बड़ा प्रश्न है। आप देखिये, राणा प्रताप वीर थे और अकबर के साथ जीवन भर संग्राम करते रहे यह हम जानते हैं। लेकिन अकबर का दासत्व स्वीकार करते हुए राजा मानसिंह प्रताप के खिलाफ लड़ रहा था। इतिहास बताता है कि जितना राणा प्रताप का पराक्रम और कर्तृत्व था उतना ही पराक्रम और कर्तृत्व मानसिंह का भी था। किन्तु अन्तर क्या था ? पराक्रम और कर्तृत्व में अन्तर नहीं था। अन्तर था उनकी मानसिकता में।

अब महाराष्ट्र का इतिहास देखिये। शिवाजी के पिताजी शाहजी बहुत कर्तृत्ववान थे। वे पांच बहमनी राज्यों की सेवा करते थे। यहाँ तक कि जब निज़ाम की मृत्यु हुई तो शाहजी ने उसके छोटे बालक को अपनी गोद में बिठाया और उसके नाम से शासन चलाया। उसके नाम से लड़ाईयाँ जीती। शासन चलाया किन्तु उनके मन में कभी यह विचार नहीं आया कि मैं हिन्दवी स्वराज की स्थापना करूंगा। उनका पुत्र शिवाजी था। उसने बचपन से ही यह सोचा था। उम्र के पन्द्रहवें साल में उन्होंने रोहिड़ेश्वर शिवलिंग पर रक्त का अभिषेक करते हुए प्रतिज्ञा की थी कि मैं हिन्दवी राज्य की स्थापना करूंगा और उन्होंने किया। उनके पिताजी उतने ही पराक्रमी, कर्तृत्ववान होते हुए भी ऐसा निश्चय नहीं कर सके। तो फर्क क्या है? शौर्य में फर्क नहीं, पराक्रम में फर्क नहीं, कर्तृत्व में फर्क नहीं। फर्क है मानसिकता में।

इतिहास बताता है कि जितना राणा प्रताप का पराक्रम और कर्तृत्व था उतना ही पराक्रम और कर्तृत्व मानसिंह का भी था। किन्तु अन्तर क्या था ? पराक्रम और कर्तृत्व में अन्तर नहीं थां। अन्तर था उनकी मानसिकता में।

अब हम जो सोचें कि संघ कि शक्ति यानि सभी स्वयंसेवकों की शारीरिक शक्ति का जोड़, तो ऐसे अन्दाजा नहीं हो सकता। विभिन्न लड़ाईयों का आप इतिहास देखेंगे तो आपको दिखेगा कि कम सेना होते हुए भी एक सेना विजयी होती है और अधिक सेना होते हुए भी दूसरी सेना पराजित

होती है। बंगाल के नवाब के पास तीन हजार की सेना थी। उधर क्लाइव के पास तीन सौ की सेना थी। लेकिन क्लाईव ने कुछ ऐसी तरकीब की कि मीर जाफर, जो सेनापति था उसको लालच देकर, घूस देकर अपने में मिला लिया और जब प्लासी की लड़ाई हुई जहाँ से ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली गयी, उसमें तीन सौ लोगों ने तीन हजार लोगों को परास्त किया। मानसिकता का सवाल है।

नेपोलियन सुप्रसिद्ध सेनापति था। विजय प्राप्त करना उसका स्वभाव था। एक बार लिबज़ीक की लड़ाई में उसका सेनापति उसके पास आया और बोला कि बड़ी समस्या है। नेपोलियन ने पूछा, 'क्या समस्या है?' बोला उनकी सेना डेढ़ लाख की है और अपनी सेना सिर्फ पचास हजार की है। नेपोलियन हंसकर बोला, "सेना तो हमारी भी डेढ़ लाख की है।" वो बोला, कैसे ? हम तो पचास हजार ही हैं। नेपोलियन ने कहा "वो पचास हजार और मैं एक लाख।" आपको रणरण होगा, गुरू गोविन्द सिंह जी ने कहा था, "सवा लाख से एक लड़ाऊँ तब गोविंद सिंह नाम कहाऊँ। चिड़ियन संग मैं बाज लड़ाऊँ, तब गोविंद सिंह नाम कहाऊँ।" एक–एक आदमी सवा लखा से लड़ेगा, ऐसा गोविंद सिंह ने कहा था।

तो शक्ति का मापदण्ड क्या है? केवल शारीरिक शक्ति से काम नहीं बनता, मानसिक शक्ति, इच्छा शक्ति से सारा काम बनता है। आज हम विभिन्न मोर्चों पर मार खा रहे हैं। क्यों मार खा रहे हैं? हमारे नेता यूरोप और अमरीका के प्रचार के प्रापेगेण्डा के शिकार बने। उन्होंने 1946 से ही यह प्रचार शुरू कर दिया था कि सभी देशों को हम स्वतंत्रता देंगे।

हम अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं बिना कोई विदेशी सहायता के। लेकिन एक शर्त है और वो है इच्छा शक्ति की। यदि इच्छाशक्ति रही तो 2020 आने के पहले ही प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में हमारा राष्ट्र बैठेगा। हमारी टेक्नोलॉजी हमारे टेक्नोलॉजिस्ट तैयार करेंगे। किसी विदेशी सहायता की आवश्यकता नहीं है, ऐसा डॉ. अब्दुल कलाम कहते थे।

लेकिन ये नव स्वतंत्र देश अपने पैरों पर खड़े ही नहीं रह सकते जब तक हमारा पैसा, हमारी टेक्नोलॉजी उनको नहीं मिले। अब इस प्रचार के शिकार हमारे अंग्रेजी शिक्षित लोग भी हो गये और हमारे नेता भी कि जब तक विदेश का पैसा और टेक्नोलॉजी यहाँ नहीं आती, तब तक हम खड़े नहीं हो सकते। अब आश्चर्य की बात देखिये। अब्दुल कलाम (तत्कालीन राष्ट्रपति) प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, टेक्नोलॉजिस्ट हैं उन्होंने एक किताब लिखी थी, 'इण्डिया इन टू 2020 ए.डी.' (India in 2020 A.D.)। उसमें उन्होंने कहा कि हमारे पास सब कुछ है। पोटेंशियल जिसको बोलते हैं वो सब है। हम अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं बिना कोई विदेशी सहायता के। लेकिन एक शर्त है और वो है इच्छा शक्ति की। यदि इच्छाशक्ति रही तो 2020 आने के पहले ही प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों में हमारा राष्ट्र बैठेगा। हमारी टेक्नोलॉजी हमारे टेक्नोलॉजिस्ट तैयार करेंगे। किसी विदेशी सहायता की आवश्यकता नहीं है, ऐसा डॉ. अब्दुल कलाम कहते थे। इसके विपरीत हमारे सब नेता बोल रहे हैं कि उनका पैसा और टेक्नोलॉजी नहीं आयेगी तो हम खड़े ही कैसे होंगे ? तो काहे का सवाल है ? पोटेंशियलियिटी तो जो है सो है, लेकिन मानसिकता का सवाल है। हमने पहले ही अपने मने में अपनी पराजय मान ली। और इसके कारण आज ये सारे गलत काम हो रहे हैं।

तो मानसिकता यह बहुत बड़ा प्रश्न है। इज़रायल और अरब देशों के झगड़े में यहूदियों को अपनी मातृभूमि से खदेड़ दिया गया। एक भी यहूदी वहाँ नहीं रहा। यहूदी सारे देशों में फैल गये थे लेकिन मन में निश्चय रखा कि

लेकिन उन्होंने 1800 साल तक अपनी मातृभूमि में अपना राष्ट्र निर्माण करने का निश्चय नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि जब भी दो यहूदी एक-दूसरे से मिलते तो विदाई के समय कहते थे "नेक्स्ट टाइम वी मीट इन जेरुशलेम" (Next time we meet in Jerushalem). अरे! तुम्हारे हाथ में है क्या जेरुशलेम ? परन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति से सारी ताकत जुटाई और इज़रायल राष्ट्र का निर्माण हो गया।

हम इज़रायल– अपना राष्ट्र– अपनी मातृभूमि में निर्माण करेंगे। आज तो लोग हमें अखण्ड भारत का नारा देते हैं तो साम्प्रदायिक कहते हैं। हमें सलाह देते हैं, छोड़ो यह अखण्ड भारत–वारत। लेकिन उन्होंने 1800 साल तक अपनी मातृभूमि में अपना राष्ट्र निर्माण करने का निश्चय नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि जब भी दो यहूदी एक–दूसरे से मिलते तो विदाई के समय कहते थे "नेक्स्ट टाइम वी मीट इन जेरूशलेम" (Next time we meet in Jerushalem). अरे! तुम्हारे हाथ में है क्या जेरूशलेम? परन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति से सारी ताकत जुटाई और इज़रायल राष्ट्र का निर्माण हो गया। चारों ओर के अरब राष्ट्रों ने सोचा, इसको खत्म करना चाहिये। नया–नया राष्ट्र है, इसको यहीं खत्म कर देना चाहिए। बार–बार हमले किये। अरब लोगों की संख्या ज्यादा थी, शस्त्र ज्यादा थे, सेनाएं ज्यादा थी। दूसरी तरफ इज़रायल तो छोटा सा था। लेकिन इज़रायल को वे परास्त नहीं कर सके।

एक जिज्ञासु आदमी को कम्प्युटर पर बहुत विश्वास था। उसके मन में आया कि कम्प्युटर में फीड करें कि अरब राष्ट्र की फौज कितनी है, इजरायल की कितनी। अरब राष्ट्र के लोग कितने हैं, इजरायल के कितने। सारा डाटा फीड़ कर दिया और फिर कहा, इसका नतीजा क्या निकलेगा ? कम्प्युटर ने कहा इतने–इतने साल में इजरायल राष्ट्र नष्ट हो जायेगा। अब उसके दूसरे दिन सारे प्रेस रिपोर्टर उनके प्रधानमंत्री के पास पहुंच गये और कहा कि आपके लिये तो बड़ी चिंता का विषय है। कम्प्युटर ने कहा है कि इतने–इतने वर्षों में इज़रायल नष्ट हो जायेगा। प्रधानमंत्री ने कहा, मेरे लिये कोई चिन्ता का विषय नहीं है। कम्प्युटर ने कहा होगा लेकिन दुनिया में ऐसा कौन सा कम्प्युटर है जो यह गिनती कर सके कि इज़रायल की इच्छा शक्ति कितनी है ?

डॉ. अब्दुल कलाम ने यही बात कही है कि 2020 के वर्ष से पहले ही हम फ्रंट रेंकिंग नेशन की गिनती में आ सकते हैं। लेकिन इच्छा शक्ति चाहिये – जनता की भी और सरकार की भी। तो शक्ति और इच्छा शक्ति हमारी कितनी है ? हम राष्ट्र के नाते तरह–तरह की समस्याओं का

मुकाबला करते हैं। डॉ. अर्नोल्ड टायन्वी ने जो कहा उस तरह से अन्य किसी भी देश में जो क्षमता नहीं, वह पारम्पारिक, सांस्कृतिक क्षमता हमारे देश में है कि विभेदों को विविधता के रूप में देखना ओर विविधता में एकात्मता का साक्षात्कार करना। यह मान लिया जाये लेकिन प्रत्यक्षत: हमारी शक्ति कितनी है ? हमारी इच्छा शक्ति कितनी है ? राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर्वांगीण प्रयासों से हिन्दू समाज जब संगठित हो जायेगा, जागृत हो जायेगा, संगठित होने के कारण बलवान हो जायेगा तो उस समय उसकी शक्ति और इच्छा शक्ति कितनी रहेगी। इसका हिसाब करने वाले कम्प्युटर का भी निर्माण हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता। मैं समझता हूँ कि थोड़ा विचार करेंगे, थोड़ी अपनी बुद्धि को चालना देंगे तो इस प्रश्न का उत्तर हम निकाल सकते हैं। संगठित हिन्दू समाज की शक्ति और इच्छा शक्ति की गिनती कौन कम्प्युटर करेगा इसका उत्तर हम दे सकते हैं।

हम जानते हैं कि परम पूजनीय डॉक्टरजी गहन चिंतक थे। मूलगामी, दूरगामी विचार करने वाले थे। बहुत दूर का देखने वाले थे। जो और किसी नेता ने नहीं देखा था। मैंने कल कहा था कि उनकी दोनों तरह की दृष्टि थी–बायफोकल। अब डॉक्टरजी ने कितना क्या देखा होगा। इसका केवल एक उदाहरण हम लेंगे।

हम जानते हैं कि परम पूजनीय डॉक्टरजी गहन चिंतक थे। मूलगामी, दूरगामी विचार करने वाले थे। बहुत दूर का देखने वाले थे। जो और किसी नेता ने नहीं देखा था। मैंने कल कहा था कि उनकी दोनों तरह की दृष्टि थी – बायफोकल। अब डॉक्टरजी ने कितना क्या देखा होगा।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण हुआ। सवाल आया कि इसके ध्वज का रंग कैसा होगा ? तो भगवा रंग तय किया गया। उसके छः साल के बाद कांग्रेस के सामने सवाल आया, राष्ट्र का झण्ड़ा कौन सा होगा तो 2 अप्रैल 1931 को करांची सम्मेलन में कांग्रेस ने ध्वज कमेटी का निर्माण किया। उस कमेटी में थे पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, मास्टर

तारासिंह, हार्डिगर, पट्टाभि सीतारमैया। उन्होंने एक मत से निर्णय किया कि झण्ड़ा भगवा होना चाहिये। डॉक्टरजी ने 1925 में झण्ड़ा भगवा किया, यहाँ 1931 में हुआ। अब यह बात ठीक है कि गांधीजी के आग्रह के कारण तिरंगा झंडा निकाला और उसका कारण भी गांधीजी की मानसिकता ही थी। वे प्रमाणिकता से सोचते थे कि एव्री हिन्दू इज़ कावर्ड एण्ड एव्री मुस्लिम इज़ ए बुली। उन्होंने भगवा स्वीकार नहीं किया किंतु कांग्रेस कमेटी ने ही एक मत से सुझाव दिया कि राष्ट्र का ध्वज भगवा होना चाहिये।

यह तो हुई छोटी सी बात। अब दूसरी बडी बात का विचार करें। आज राष्ट्रीय स्तर पर एक समस्या का सामना हम कर रहे हैं। इसलिये स्वदेशी जागरण मंच का प्रयोजन है कि विदेशियों का आर्थिक साम्राज्य भारत पर, बाकी विकासशील देशों पर नहीं आना चाहिये। जो गोरे देश गैर गोरे देशों पर अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं यह नहीं हो यह स्वदेशी जागरण मंच का विषय है। किंतु डॉक्टरजी की दूरदृष्टि कितनी थी यह देखिये। सन् 1920 की बात है। नागपुर में कांग्रेस का सेशन था। उसमें स्वागत समिति के नाते डॉक्टरजी थे। डॉक्टरजी के रहने के कारण उनके ड्राफ्टिंग में एक प्रस्ताव स्वागत समिति ने पास किया और ए आई सी सी के पास भेजा। वो स्वीकार करने की मानसिकता उस समय ए आई सी सी की नहीं थी लेकिन डॉक्टरजी ने उस समय जो प्रस्ताव भेजा वह चिंतनीय विषय था। डॉक्टरजी ने उस समय जो लिखा था ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी को अपने ध्येय क्या हैं यह स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करना चाहिये। वह ध्येय द्विविध होना चाहियेः 1. भारत को स्वतंत्र करते हुये उसमें गणराज्य की स्थापना करना। 2. दुनिया के सभी देशों को पूंजीवाद के चंगुल से मुक्त करना।

यह ध्येय कांग्रेस को घोषित करना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव भेजा। 1920 में यह प्रस्ताव भेजा। इसका महत्व है क्योंकि विशेषता यह है कि 1917 में रूस में कम्युनिस्ट क्रांति हो चुकी थी और कम्युनिस्टों का शासन हो चुका था। सफल क्रांति हुई थी इसके कारण दुनिया को लग रहा था कि अब

कम्युनिज़्म फैलेगा और केपिटालिज़्म को नष्ट करने का काम कम्युनिज़्म करेगा। इतना ही नहीं, हमारे पण्डित नेहरू आदि लोग भी यही कहने लगे थे। हमारे राजनेता भी यही सोचने लगे थे। इस अवस्था में यदि डॉक्टरजी ने यह कहा कि पूंजीवाद को नष्ट करने का ध्येय कांग्रेस का होना चाहिये, इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि जवाहर लालजी और बाकी लोगों को लगता था कि कम्युनिज़्म यह काम करेगा, लेकिन डॉक्टरजी सोचते थे कि यह काम कम्युनिज़्म से होने वाला नहीं है। इसके बाद हमें ही यह काम करना पड़ेगा। ऐसा दूर का दृश्य वे देखते थे। इस कारण उन्होंने कांग्रेस के सामने ये दो ध्यये रखे। उन्होंने दूरदृष्टि से कुछ देखा।

मैनें कहा, उनका बायफोकल दृष्टि था। तात्कालिक लक्ष्य के नाते उन्होंने हिन्दू राष्ट्र का स्वातंत्र्य रखा किंतु अंतिम लक्ष्य के नाते रखा हिन्दू राष्ट्र का परम वैभव। हेडगेवार जी स्वप्नरंजन करने वाले नहीं थे, ड्रीमर नहीं थे। दृष्टा थे, विज़नरी थे। अपनी प्रार्थना में "परम वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्" ऐसी पंक्ति रखी तो उन्होनें स्वप्न के नाते ऐसा नहीं कहा था। उन्होंने दृष्टा के नाते ऐसा देखा था कि परम वैभव तक जाने की क्षमता हमारे देश के अंदर है। इतनी शक्ति और इतनी इच्छाशक्ति जाग्रत होगी तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का काम पूरा होगा। सारा हिन्दू समाज जागृत, संगठित होगा। उस समय परम वैभव यह शब्द रखा। हिन्दू राष्ट्र के विजय की अपरिहार्यता–यह उसका मतलब था।

अपनी प्रार्थना में "परम वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्" ऐसी पंक्ति रखी तो उन्होनें स्वप्न के नाते ऐसा नहीं कहा था। उन्होंने दृष्टा के नाते ऐसा देखा था कि परम वैभव तक जाने की क्षमता हमारे देश के अंदर है। इतनी शक्ति और इतनी इच्छाशक्ति जाग्रत होगी तब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का काम पूरा होगा।

अंब देखिये, वैसे तो भाषा अलंकार के नाते हर पार्टी हर संगठन, हर नेता कहता है कि अंतिम विजय हमारी ही होगी। यह भाषा अलंकार है। किंतु केवल विजय की बात नहीं, The

ultimate faith in the inevitability of the ultimate triumph of Hindu Rastra. Implicit faith- पूर्ण विश्वास है कि हिन्दू राष्ट्र की अंतिम विजय होगी। यह अंतिम विजय अपरिहार्य है। इतना नहीं तो, यह छोड़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। यह उनका पूर्ण विश्वास था और इसलिये 'परम वैभवम्' यह शब्द डाला गया। केवल भाषा अलंकार के नाते लिखने वाले अपने परम पूजनीय डॉक्टरजी नहीं थे। इसी इम्प्लीसिट फेथ को हम भी जरा स्वीकार करें तो आज जितने संकट दिखते हैं, अर्नोल्ड टायन्वी ने भी कहा कि दुनिया में जितने संकट हैं वो सारे संकट हिन्दुस्थान में हैं तो भी हम इसके ऊपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। तो विजय की दृष्टि से अंतिम विजय की अपरिहार्यता पर इम्प्लीसिट फेथ यानि पूर्ण विश्वास डॉक्टरजी के समान हम धारण करें इतना ही कहना इस समय पर्याप्त है। ❑

७

जिस प्रकार व्यवहार चतुर कहे जाने वाले लोगों के सामने मापदण्ड हैं उसी प्रकार जो व्यवहार चतुर नहीं होते, जिन पर आदर्शों का पागलपन सवार नहीं होता है, उनके भी अपने जीवन मूल्य होते हैं। दुनिया जिसे पागलपन कहती है, उस आधार पर जो लोग काम कर रहे हैं, वे बड़प्पन और जीवन की सार्थकता को दूसरे ढ़ंग और दृष्टि से देखते हैं। नेपोलियन जब आदर्शवाद खो बैठा, पद और स्थान के पीछे लगा और फलस्वरूप उसकी विचार–पद्धति में परिवर्तन हुआ तो उसने एक बात कही जो बहुत प्रसिद्ध है और शायद उसी का अनुसरण आज हमारे सार्वजनिक क्षेत्र में हो रहा है। उसने कहा कि "Men are like figures. They are valued according to the position they occupy."–अर्थात् व्यक्ति आँकड़ों के समान हैं। उनका बड़प्पन इस बात पर अवलम्बित है कि वे किस स्थान पर है।

जो व्यवहार चतुर नहीं होते, जिन पर आदर्शों का पागलपन सवार नहीं होता है, उनके भी अपने जीवन मूल्य होते हैं। दुनिया जिसे पागलपन कहती है, उस आधार पर जो लोग काम कर रहे हैं, वे बड़प्पन और जीवन की सार्थकता को दूसरे ढ़ंग और दृष्टि से देखते हैं।

इस प्रकार उन्होंने कहा कि कोई व्यक्ति ऊँचे पद पर जायेगा तो ही उसका बड़प्पन बढ़ेगा। हमारे यहाँ इससे उल्टा कहा गया है कि '**प्रासादशिखरस्थोअपि काको न गरूड़ायते।**' गरूड़ जमीन पर बैठा हो या पेड़ पर बैठा हो वह गरूड़ ही रहेगा और कौआ राजप्रासाद के शिखर पर बैठा है तो भी वह कौआ ही रहेगा। वह गरूड़ नहीं बन सकता। हमारी ऐसी धारणा है कि केवल पद और स्थान के आधार पर बड़प्पन नहीं होता।

बड़प्पन एक यथार्थ है। अन्तर्भूत मूल्य विचार और व्यवहार के दो अलग–अलग तरीके हम इतिहास में देखते हैं। अपने यहाँ पिछले दिनों की कुर्सी की लड़ाई सर्वविदित है। बड़प्पन का अर्थ ही जिन्होंने कुर्सी पाने से लगाया। उन्होंने कुर्सी से चिपके रहने में ही अपने जीवन की सार्थकता आंकी। लेकिन हम इतिहास के कुछ उदाहरण देखें तो सत्य इसके विपरीत नज़र आता है। इस दृष्टि से इटली का एक बड़ा उदाहरण हमारे सामने है। इटली आस्ट्रियन समाज के अन्तर्गत आता था। उस समय लोगों में इटालियन, राष्ट्रत्व की भावना जाग्रत करने, जाग्रत लोगों का संगठन करने के लिये प्रसिद्ध था। आस्ट्रियन साम्राज्य के खिलाफ लड़ने के लिए लोगों को प्रवृत करने का सारा काम जोसेफ मैज़िनी ने किया। उनको इटली का राष्ट्रपिता कहा जाता है। लेकिन एक मौका ऐसा आया कि आस्ट्रिया के साथ प्रत्यक्ष लड़ाई करने की स्थिति पैदा हो गई। लड़ाई के अवसर पर उन्होंने अपने साथियों से कहा, "ठीक है, मैं आपका नेता हूँ और ऐसा आप मानते भी हैं लेकिन यह मौका लड़ाई का है। इस समय नेता के नाते एक ऐसा आदमी होना चाहिए जो लड़ाई का तन्त्र जानता हो। मैं युद्धतंत्र नहीं जानता हूँ, दूसरे कार्य अच्छी तरह से कर सकता हूँ। युद्धतंत्र के जानकार गारीबाल्डी हैं। इस समय हम सबको गारीबाल्डी को अपना नेता बनाना स्वीकार करना चाहिए।" इतिहास साक्षी है कि जिस गारीबाल्डी को उस समय मैज़िनी जितनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं थी, उसको अपना नेता बनाया और मैज़िनी स्वयं सैनिक वेष पहनकर, हाथ में रायफल लेकर एक सिपाही के नाते गारीबाल्डी के कमाण्ड के अन्तर्गत जाकर खड़े हो गए। क्या हम कल्पना कर सकते हैं कि आज हमारे सार्वजनिक जीवन की जो मनोभूमिका है, उसमें आज का कोई नेता इस तरह का व्यवहार कर सकता है ?

गारीबाल्डी ने लड़ाई जीती, शत्रु को परास्त किया। रोम को जीता। रोम में विजयी वीर के रूप में प्रवेश किया। पूर्व निश्चय के अनुसार पिडमाण्ट के विक्टर इमन्युअल को गद्दी पर बिठाया, उनका राज्याभिषेक कराया और राज्याभिषेक के पश्चात् जब नई सरकार बनाने की रूपरेखा पर चर्चा

चली तो गारीबाल्डी ने कहा कि "मैं छुट्टी मांगने आया हूँ। मैं तो घर जा रहा हूँ।" गारीबाल्डी ने कहा कि "अब तक का काम लड़ाई का काम था। मैं युद्धशास्त्र जानता था इसलिए मैंने युद्ध किया। इसके पश्चात् काम राजनीति का है, कूटनीति का है, उसमें मेरी गति नहीं है इस दृष्टि से इटली का नेतृत्व अब कैव्हूर ही कर सकते हैं। आप उनके हाथ में शासन की बागडोर दे दीजिए। मैं अपने गाव केप्री में खेती करने के लिए जाना चाहता हं। मुझे छुट्टी दे दीजिए।" उन्होंने छुट्टी ली और अपने गाव की खेती पर चले भी गए। अर्थात् सारी·विजय उन्होंने सम्पादन की, परन्तु देश के व्यापक हित के लिए आगे की जिम्मेदारी दूसरों को देकर कहा कि "अब जिन गुणों की आवश्यकता है वे गुण अलग प्रकार के हैं। वे मेरे अन्दर नहीं, दूसरों के अन्दर हैं। उनको नेता बना दीजिए" – और कैव्हूर को प्रधानमंत्री बनाकर वे स्वयं निरपेक्ष भाव से चले गए। क्या आज हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि हमारे देश में भी यह हो सकता है।

उन्होंने छुट्टी ली और अपने गाँव की खेती पर चले भी गए। अर्थात् सारी विजय उन्होंने सम्पादन की, परन्तु देश के व्यापक हित के लिए आगे की जिम्मेदारी दूसरों को देकर कहा कि "अब जिन गुणों की आवश्यकता है वे गुण अलग प्रकार के हैं। वे मेरे अन्दर नहीं, दूसरों के अन्दर हैं। उनको नेता बना दीजिए"

उदाहरण के लिए एक प्रसंग बताता हूँ। पाण्डव वनवास में थे। माता कुन्ती के हाथ से कुछ अच्छा काम हुआ तो भगवान प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "वर मांगों।" वस्तुत: उनके सामने पहला सवाल यही था कि खोया हुआ राज्य कैसे प्राप्त हो। स्वाभाविक ही कुन्ती चाहती तो सीधे राज्य प्राप्ति का वरदान मांग लेती। लेकिन उन्होंने जो मांगा वह बहुत ही आश्चर्यजनक था। उन्होंने कहा, "भगवान ! मुझे ऐसा वरदान दीजिए कि हमारे ऊपर हमेशा आपत्तियाँ बनी रहे ताकि तुम्हारा स्मरण हमें हमेशा होता रहे।" जब राज्य प्राप्त करने के चक्कर में सब पड़े हुए थे, तब ऐसा वरदान मांगा और जब युद्ध समाप्त हुआ, जीत हुई, राज्य प्राप्त हुआ, तो

उस समय की एक घटना है। धृतराष्ट्र वन जाने के लिए निकले। पाण्डवों ने उन्हें रूकने के लिए कहा लेकिन वे नहीं माने। उन्होंने कहा कि अब मैं वनवास जाऊँगा ही। उनके साथ जब कुन्ती तैयार हुई तो पाण्डवों ने कहा, "माँ! तुमने आग्रह किया था, इसलिए हमने यह युद्ध लड़ा। अब राज्य प्राप्त होने के बाद तुम जा रही हो।" तो कुन्ती माता ने कहा, "मैंने तुमको राज्य प्राप्त करने का आदेश इसलिए नहीं दिया कि हम लोग राज्य का उपभोग करेंगे, बल्कि युद्ध का आदेश इसलिए दिया था कि तुम क्षत्रिय हो। तुम्हारा कर्तव्य अन्याय का प्रतिकार करना है। धर्मपालन के लिए राज्य प्राप्ति आवश्यक थी। वह मैंने तुम्हें बताया। अब धर्म का आदेश मुझे है कि जब मेरे जेठ वनवास के लिए जा रहे हैं तो मैं भी उनकी सेवा में वनवास ही स्वीकार करूँ। मेरा धर्म मुझे यही बताता है। इसलिए मैं भी वनवास में जा रहीं हूँ।" अर्थात् समस्त प्रयास करके राज्य प्राप्त करने के बाद जंगल की बात सोचने का यह आदर्शवादी जीवन–मूल्य उनके जीवन में हमें दिखाई देता है।

पुराने इतिहास में ऐसे कई उदाहरण हैं। भरत का है, चाणक्य का है। कितने ही उदाहरण हैं। किन्तु कोई सोचेगा कि ये तो पुराने उदाहरण हैं। क्या हमारे नये इतिहास में भी ऐसे उदाहरण हैं? जी हाँ, ऐसे उदाहरण आज के इतिहास में भी है। स्वयं अपनी तरफ से नेतृत्व छोड़ने की घटनाएं अभी–अभी के इतिहास में भी मिलती हैं।

लोकमान्य तिलक 1916 के पश्चात् एक तरह से सम्पूर्ण देश के नेता थे। उसी समय में महात्माजी हिन्दुस्थान आये। दक्षिण अफ्रिका में किये गये सत्याग्रह की बहुत चर्चा थी। उनके शांतिपूर्वक असहयोग के प्रस्ताव को कांग्रेस को भी करके दिखाना चाहिए, यह विचार कांग्रेस के लोगों के मन में आ रहा था। तिलकजी ने जब देखा कि शायद कांग्रेस इस तरह का आंदोलन छेड़ने का विचार कर सकती है तो उन्होंने गाधीजी से कहा, "ठीक है, ये लोग मेरी बात मानते हैं। मैं नेता हूँ। किन्तु यदि आपके ढ़ंग से ही आन्दोलन चलाने का निर्णय हुआ तो उसका तंत्र मैं नहीं जानता, उसे

आप जानते हैं, अतएव उसका नेतृत्व आपको करना होगा।" यह बात और है कि उसके बाद उनकी मृत्यु हो गयी। किन्तु उनकी इस बात से स्पष्ट होता है कि यदि उनकी मृत्यु नहीं हुई होती तो एक सिपाही के नाते गांधीजी के नेतृत्व में खड़े होने की उनकी मानसिक तैयारी थी।

गांधीजी के जीवन में भी एक ऐसा उदाहरण आता है जो आज के राजनैतिक वायुमण्डल में बहुत ही उद्‌बोधक है। उन्होंने 1924 में बेलगाव कांग्रेस की अध्यक्षता की। जीवन में एक ही बार वह बड़ा सम्मान उन्होंने स्वीकार किया। उस समय चर्चा चल रही थी कि विधानमण्डलों में जाना या नहीं। गांधीजी इस मत के थे कि नहीं जाना चाहिए। जो इस मत के थे कि जाना चाहिए, उन्होंने स्वराज्य पार्टी के नाम से अलग गुट तैयार किया था। इसका नेतृत्व बेरिस्टर चितरंजनदास, मोतीलाल नेहरू आदि कर रहे थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई तो उस समय बहुमत गांधीजी के विचारों के पक्ष में था। गांधीजी ने छह महिने तक देश का दौरा किया और लोगों के साथ बातचीत की तो उनको दिखाई दिया कि यद्यपि कांग्रेस अधिवेशन के समय बहुमत उनके साथ था, किन्तु धीरे–धीरे लोगों के विचारों में परिवर्तन आ रहा है और अब लोगों को ऐसा लग रहा है कि विधान मण्डलों में एक बार जाकर देखना चाहिए कि स्वातंत्र्य प्राप्ति में उसका क्या योगदान हो सकता है।

उन्होंने गांधीजी से कहा, "ठीक है, ये लोग मेरी बात मानते हैं। मैं नेता हूँ। किन्तु यदि आपके ढ़ंग से ही आन्दोलन चलाने का निर्णय हुआ तो उसका तंत्र मैं नहीं जानता, उसे आप जानते हैं, अतएव उसका नेतृत्व आपको करना होगा।"

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के मन में यह विचार परिवर्तन हो रहा है इस बात का पता और किसी को नहीं था क्योंकि लोग अपने–अपने स्थान पर अलग–अलग विचार कर रहे थे। स्वराज्य पार्टी के लोगों को भी इस बात का पता नहीं था। लेकिन गांधीजी को पता था। यह पता होने के पश्चात् उन्हें लगा कि मेरा कुछ नैतिक कर्तव्य है। जुलाई महिने

में उन्होंने स्वराज्य पार्टी के उस समय के नेता मोतीलालजी को एक पत्र लिखा कि आप शायद नहीं जानते हैं कि कांग्रेस में उस समय में मेरे विचारों के पक्ष में बहुमत था, लेकिन अब बहुमत की राय बदल रही है। अब बहुमत आप के ही विचारों को पसन्द कर रहा है। इस दृष्टि से मैं त्यागपत्र दे रहा हूँ। आप कोंग्रेस की अध्यक्षता स्वीकार कर लीजिए। उन दिनों कांग्रेस का अध्यक्ष पद सार्वजनिक क्षेत्र में उतना ही महत्वपूर्ण माना जाता था, जितना महत्वपूर्ण आज प्रधानमंत्री का पद है। कांग्रेस अध्यक्ष के महत्वपूर्ण पद को छोड़ने की कल्पना करना भी आज के जीवन में कठिन प्रतीत होता है।

अतएव जिनके आदर्शवादी जीवन मूल्य होते हैं वे अलग ढंग से सोचते हैं और जिनके केवल व्यक्तिवादी, मेरा बड़प्पन, मेरा गौरव, मेरा नाम–विचार हैं, वे कुछ अलग ढ़ंग से सोचते हैं। हम लोग सामूहिक नेतृत्व में विश्वास करते हैं तो हमारे जीवन मूल्य क्या होने चाहिए, सोचने का ढ़ंग क्या होना चाहिए, इसके बारे में बारीकी से सोचना आवश्यक है, क्योंकि हमारे नेतृत्व की जो गुणवत्ता होगी, उसी का असर हमारे क्षेत्र और देश दोनों पर होगा। हमारे सोचने का ढ़ंग और भावना क्या रहे, इसका बहुत महत्व है।

हम लोग सामूहिक नेतृत्व में विश्वास करते हैं तो हमारे जीवन मूल्य क्या होने चाहिए, सोचने का ढ़ंग क्या होना चाहिए, इसके बारे में बारीकी से सोचना आवश्यक है, क्योंकि हमारे नेतृत्व की जो गुणवत्ता होगी, उसी का असर हमारे क्षेत्र और देश दोनों पर होगा। हमारे सोचने का ढ़ंग और भावना क्या रहे, इसका बहुत महत्व है।

आज हम नेतृत्व के बारे में सोचते हैं तो हमारा ध्यान राजनैतिक क्षेत्र में प्रचलित शब्द नेताजी की ओर स्वाभाविक रूप से जाता है। कई लोगों को तो नेताजी की उपाधि भी प्राप्त हो गई है। सुभाषचन्द्र बोस को तो यह उपाधि ा प्राप्त करने के लिए आत्मबलिदान करना पड़ा था। किन्तु आज वैसा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। आज हर व्यक्ति नेता

बनने की कोशिश कर रहा है और नेता .का व्यवहार कैसा होना चाहिए, उसका स्वरूप और तरीका भी तय हो चुका है कि नेता अर्थात् वह जो कमाण्ड करता है, लोगों को आदेश देता है, किन्तु स्वयं काम नहीं करता। सभा, सम्मेलन बैठक होगी तो दरिया उठाने का काम नहीं करेगा, किन्तु भाषण देने के लिये आयेगा। आज यह एक तरीका निर्माण हो गया है कि वह बाहर निकलेगा तो सीना तानकर, गर्दन ऊँची करके। किसी ने प्रणाम किया तो उसके उत्तर में पूरा प्रणाम नहीं करेगा। गर्दन जरा सी झटक कर प्रणाम स्वीकार करेगा। अर्थात् मैं कुछ हूँ मैं कुछ कम नहीं हूँ, मैं तुम्हारा नेता हूँ, यह विचार लेकर चलने वाले नेताओं की बड़ी फसल आज हिन्दुस्तान में आ रही है।

जो नए–नए लोग राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं, उनके मन के ऊपर यह संस्कार नहीं है कि देश की सेवा करनी है। उनके ऊपर यह संस्कार है कि ये जो बूढ़े लोग हैं उनके अन्दर कौनसी बड़ी योग्यता है ? हम क्या कम हैं? अब ऐसे वायुमण्डल में हमारा व्यवहार, विचार, भावना और ढ़ंग आदि नेताजी का ही रहा तो क्या हम कोई बड़ा काम कर सकेंगे ? आज के नेता कहलाने वाले नेता और नेता के व्यवहार को देखेंगे तथा जिनके आदर्शवादी जीवन मूल्य हैं या थे, उन लोगों के व्यवहार के साथ तुलना करेंगे तो आपको दिखाई देगा कि उनका व्यवहार बिल्कुल अलग ढ़ंग का था। वह आज के नेताओं के व्यवहार से मेल नहीं खाता।

जिनके आदर्शवादी जीवन मूल्य हैं या थे, उन लोगों के व्यवहार के साथ तुलना करेंगे तो आपको दिखाई देगा कि उनका व्यवहार बिल्कुल अलग ढ़ंग का था। वह आज के नेताओं के व्यवहार से मेल नहीं खाता।

जब चुनाव के बाद चर्चा हुई, जगह जगह से रिपोर्ट आई तो लोगों ने कहा कि हमें चुनाव में बहुत बड़ा विचित्र दृश्य दिखाई दिया। इसके पूर्व तो कार्यकर्ता छोटा–छोटा काम करते थे – मतदाताओं के नाम लिखना, पर्चिया बांटना, दरिया उठाना, कुर्सिया लगानां आदि। किन्तु

इस बार तो ऐसा दिखाई दिया कि जो कार्यकर्ता के नाते थे, वे नेता बन गये हैं। सामान्य प्रबन्धन देखना और निरीक्षण परीक्षण करना सभी को प्रिय है। प्रत्यक्ष क्षेत्र में जो छोटा कार्य करना है उसे कौन करेगा, वे इसकी फिक्र नहीं करते। यह सुन कर हमने कहा भाई, जो बीज बोये हैं, यह उसी का फल हैं।

आदर्श जीवन–मूल्य के प्रति प्रतिबद्ध लोगों का व्यवहार उनके जीवन की छोटी घटनाओं से हमारे सामने किस तरह से आता है, इस सम्बन्ध में तिलकजी का एक और उदाहरण देता हूँ :

उनके जीवन की एक बिल्कुल छोटी सी घटना 1916 में लखनऊ में हुए कांग्रेस अधिवेशन की है। महाराष्ट्र और दक्षिण से भी लोग आये थे। अधि ावेशन में चर्चा लम्बी चलने के कारण बड़ी देर से सोये। लेकिन सुबह हुई, लोग हाथ–मुंह और स्नान आदि के लिए निकले तो उन्होंने देखा कि पानी गरम करने के लिए बड़े–बड़े बर्तन रखे हुए थे। तिलकजी चूल्हा जला रहे थे। लोगों ने उनसे पूछा "आप चूल्हा क्यों फूंक रहे हैं ?" तो तिलकजी ने कहा कि भाई, लखनऊ के लोग इस बात को समझ नहीं पायेंगे कि जो प्रतिनिधि दक्षिण के प्रदेशों से आये हैं, वे इस सर्दी को सह नहीं सकेंगे। उत्तर का जाड़ा उन्हें बर्दाश्त नहीं होगा। नहा–धोकर बैठक में जल्दी पहुंचना है। इसलिए पानी गरम कर रहा हू। आज के नेता क्या व्यवस्था सम्बन्धी इतनी चिन्ता कर सकते हैं? छोटी–छोटी बातों का और स्वयं परिश्रम करने का इतना ध्यान रखना क्या उन्हें जम सकेगा ? नेताजी तो जोड़–तोड़ में इतने फंसे रहते हैं कि ये सब बातें उनके लिये निरर्थक हैं।

हिन्दुस्थान की राष्ट्रभक्ति से प्रेरणा और संस्कार पाकर समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पुनः एक नई शक्ति का जागरण हो रहा है। इस जागरण की बेला में यशस्वी होने के बाद हमारी मनोवृत्ति कैसी रहनी चाहिए इस दृष्टि से प्रथम बाजीराव पेशवा का उदाहरण अनुकरणीय है।

वे उत्तर दिग्विजय करना चाहते थे। किन्तु हिन्दवी स्वराज नया–नया था और दिग्विजय के लिए आवश्यक साधन सामग्री स्वराज्य में ही उपलब्ध

। नहीं थी। इस कारण शाहू छत्रपति बाजीराव को उत्तर दिग्विजय करने की अनुमति नहीं दे रहे थे। उस समय छत्रपति को बाजीराव ने लिखा कि आप हमें केवल दिग्विजय करने की आज्ञा दे दीजिए। सेना खड़ी करने और आवश्यक कोष निर्माण करने का काम हम कर लेंगे। श्रेष्ठ पूर्वजों का नाम लेना और उनके समान पराक्रम न करना, यह बात हमारे लिए शोभादायक नहीं है। हम सब कुछ कर लेंगे। आपके आशीर्वाद से हम हिन्दुस्थान जीत लेंगे।

दिग्विजय मिलने के पश्चात् भी वे अपनी मूल भूमि को भूले नहीं। वे कहते थे, यहा के लोग हमें स्वामी, स्वामी ऐसा पुकारते हैं। हम स्वामी कैसे हैं? हमारे स्वामी तो वहा (सतारा में) बैठे हुए हैं। जब तक भूमिका कायम रही, तब तक हिन्दवी स्वराज्य का विस्तार होता गया। जिस दिन यह मनोवृत्ति बदली, उसी दिन साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हुआ।

जब तक अहंकार रहता है, शक्ति भी एकत्र नहीं की जा सकती। यदि दो निरहंकारी व्यक्तियों की शक्ति एक और एक मिलाकर ग्यारह (1+1=11) हो जाती है तो अहंकार के कारण यही शक्ति दशमलव एक एक (0.1–1) हो जाती है। कुशल संगठक सदा इस विचार को ध्यान में रखता था। आदर्शवादी व्यक्ति को अपने वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन का ध्यान रहता है। उसके पास अपना काम करने का समय ही नहीं होता है। अपना निज का कुछ करने की इच्छा ही नहीं होती। वह पूरी शक्ति से प्रयास करता है और उसकी प्रबल इच्छा होती है कि दूसरों का जीवन सफल हो, उनको सुविधाएँ मिले, उनका आर्थिक जीवन उन्नत हो। अपने लिए कठोर लेकिन दूसरों के लिये मृदु। जब दूसरों का दु:ख देखकर उसके हृदय में

जब तक अहंकार रहता है, शक्ति भी एकत्र नहीं की जा सकती। यदि दो निरहंकारी व्यक्तियों की शक्ति एक और एक मिलाकर ग्यारह (1+1=11) हो जाती है तो अहंकार के कारण यही शक्ति दशमलव एक एक (0.1–1) हो जाती है। कुशल संगठक सदा इस विचार को ध्यान में रखता था।

पीड़ा होगी तभी वह यह काम कर सकेगा। **वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे।** पराई पीड़ा को समझने वाले को अपनी पीड़ा मालूम नहीं होती, क्योंकि अपने प्रति उनके जीवन का व्यवहार कठोर होता है। अपने साथ अपना व्यवहार कठोर होना कितनी बड़ी बात है। हम तो अपना कार्य करते हैं। दूसरों का क्या होता है उसकी चिन्ता क्या करना, ऐसा सोचने वाला वैष्णव जन नहीं कहलाता। वैष्णव जन तो वह होता है जो खुद के बारे में अतीव कठोर और दूसरों के बारे में अति मृदु। **वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि,** फूल से भी मृदु, वज्र से भी कठोर व्यक्ति ही महान कार्य कर सकता है।

गांधीजी के जीवन की एक घटना है। परचुरे शास्त्री उनके एक अनुयायी थे। वे अच्छे विद्वान एवं पंडित थे। उन्हें कोढ़ हो गया था। गांधीजी ने उनको अपने पास आश्रम में रहने के लिए बुलाया। स्वयं कुष्ठ रोग से सम्बन्धित साहित्य पढ़ना शुरू किया। उसमें एक बात आई की जैतून के तेल की मालिश करने से कुष्ठ रोग कुछ कम हो सकता है। मालिश करने का काम गांधीजी ने स्वयं अपने हाथ में लिया। वे हर तीसरे दिन उनकी मालिश करते थे। उस समय सत्ता के हस्तान्तरण की चर्चा अंग्रेजों के साथ चल रही थी। लॉर्ड माउन्टबेटन के साथ चर्चा करने गांधीजी दिल्ली आये थे। शास्त्रीजी की मालिश करने का समय, क्रम तय था। उसके अनुसार दिल्ली से वापसी का आरक्षण गांधीजी ने करा रखा था। परन्तु उसमें शक था कि ट्रेन के समय तक यह चर्चा पूरी होगी या नहीं होगी। सत्ता हस्तान्तरण जैसी महत्वपूर्ण बातचीत के लिए

हमें यह देखना होगा कि सामूहिक नेतृत्व के नाते हममें से हर एक का जीवन मूल्य क्या हो ? किस तरह के नेतृत्व की अपेक्षा बड़े काम में हुआ करती है ? नेतृत्व केवल पद और स्थान पर अवलम्बित नहीं होता। वह मूल्यों पर आधारित है। उसका आधार है व्यक्ति की आन्तरिक योग्यता। वही व्यक्ति के कार्य, विचार और व्यवहार का वास्तविक मानदण्ड होता है।

दिल्ली जाते हुए भी महात्मा गांधी स्वयं के लिए निर्धारित काम को नहीं भूले। इतना ही नहीं, दिल्ली पहुंचकर लॉर्ड माउन्टबेटन से कहा कि मुझे इस ट्रेन से वापस जाना है। उस समय तक चर्चा पूरी हुई तो ठीक है, वरना इसका समय बढ़ाना होगा। सोचने की बात यह है कि गांधीजी ने अपने एक अनुयायी की मालिश को इतना महत्व क्यों दिया। उनमें सत्ता पर अधिकार जमाने की लालसा होती तो उनका व्यवहार अलग होता। क्या आज के नेतागण इस प्रकार का व्यवहार करते दिखाई देते हैं ?

हमारे इतिहास में नेतृत्व का सबसे अच्छा उदाहरण भगवान श्रीकृष्ण ने प्रस्तुत किया। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ की एक घटना है। बहुत बड़ा समारोह था। उसमें तरह–तरह के विभाग सम्भालने की आवश्यकता थी। पाण्डवों ने सब से पूछा कि भाई, तुम कौनसा विभाग देखोगे? हरेक ने अपनी–अपनी इच्छा का विभाग ले लिया। जब श्रीकृष्ण से पूछा गया तो उन्होंने कहा, मैं भोजन होने के पश्चात् जूठन उठाने का काम करूंगा। अर्थात् चक्रवर्तियों का नेतृत्व करने वाला पुरूष जूठी पत्तलें उठाने का काम स्वयं मांग लेता है।

अपने सामने ये दो तरह के जीवन–मूल्य हैं। इनमें से हमें यह देखना है कि जो विशाल ध्येय हमने सामने रखा है, उसको यदि प्राप्त करना है, राष्ट्र निर्माण करना है तो इन दोनों जीवन मूल्यों में से कौनसा जीवन–मूल्य हम अपनायें ? हमें यह देखना होगा कि सामूहिक नेतृत्व के नाते हममें से हर एक का जीवन मूल्य क्या हो ? किस तरह के नेतृत्व की अपेक्षा बड़े काम में हुआ करती है ? नेतृत्व केवल पद और स्थान पर अवलम्बित नहीं होता। वह मूल्यों पर आधारित है। उसका आधार है व्यक्ति की आन्तरिक योग्यता। वही व्यक्ति के कार्य, विचार और व्यवहार का वास्तविक मानदण्ड होता है। ❑

मा.दत्तोपंत बापुराव ठेंगड़ी

- 10 नवम्बर, 1920–14 अक्टुबर 2004
- आर्वी ग्राम, जिला वर्धा (महाराष्ट्र)
- शिक्षा : एम.ए., एल.एल.बी., मॉरीस कॉलेज, नागपुर
- संस्थापक : अखिल भारतीय मजदूर संघ,
  स्वदेशी जागरण मंच, भारतीय किसान संघ,
  समरसता मंच, सर्व पंथ समादर मंच
- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक (मुख्यतः कार्य क्षेत्र केरल एवं बंगाल)
- सादगी पूर्ण जीवन, गहन अध्ययनशील, महान चिंतक, स्पष्ट विचारक, गजब की नेतृत्व क्षमता वाले
- अच्छे लेखक एवं वक्ता
- हिन्दी एवं अंग्रेजी के अलावा अनेक भाषाओं के ज्ञाता
- राष्ट्र ऋषि के नाम से जाने जाते हैं।
- 1950 से 1955 तक इंटक में कार्य किया। कम्युनिस्ट पार्टी के रेलवे यूनियन एवं पोस्ट यूनियन से भी जुड़े रहे।
- 1964 से 76 तक में दो बार राज्य सभा के सदस्य रहे एवं 1968 से 70 तक राज्य सभा में अध्यक्ष मण्ड़ल के सदस्य भी रहे।
- देश विदेश में संगठनात्मक प्रवास रहा।
- हिन्दी में लिखी आपकी शोधपूर्ण पुस्तकें : **प्रस्तावना, कार्यकर्ता, सप्तक्रम** एवं **राष्ट्रनायक डॉ. अम्बेड़कर** अत्यधिक लोकप्रिय हैं।
- अंग्रेजी में लिखी पुस्तकें आज विश्व भर में पढ़ी जाती हैं; जिनमें प्रमुख हैं :
  - The Third Way
  - Modernization Without Westernization,
  - What Sustains Sangh ?
  - Our National Renaissance, Its Directions and Destination
  - Nationalist Pursuit
  - The Great Sentinel and The Perspective.